Chapter-3

3

==

:: तृतीय अध्याय ::

:: प्रेमचन्दोत्तरकाल के दलित-चेतना से अनुप्राणित उपन्यास ::

==

A Dhaval PRODUCT A'BAD

: तृतीय अध्याय :

:प्रेमचन्दोत्तर काल के दलित चेतना से अनुप्राणित उपन्यास

{1937 - 1947}

प्रास्ताविक :

यह सर्वविदित तथ्य है कि औपन्यासिक विकास क्रम में सन् 1918 से 1936 तक के काल खण्ड को प्रेमचन्द काल कहा गया । आठ अक्टूबर सन् 1936 को प्रेमचन्द का निधन हुआ । अतः उसके बाद की औपन्यासिक यात्रा को प्रेमचन्दोत्तर काल कहा जाता है । प्रेमचन्द युग का उपन्यास सामाजिक, समस्यामूलक उपन्यास रहा है । उस समय

की सामाजिक समस्याओं में नारी शिक्षा की समस्या, दहेज की समस्या, अनमेल विवाह की समस्या, शिशु विवाह की समस्या, वृद्ध विवाह की समस्या, शराब और जुए जैसे दूषणों दूषणों की समस्या, जातिवाद की समस्या, अस्पृश्यता की समस्या जैसी समस्याओं को परिगणित कर सकते हैं ।

19 वीं शताब्दी में हमारे देश में अंग्रेजों का शासन स्थापित हो चुका था । इस काल में कुछ मिशनरी ईसाई-पादरी अपने धर्म का प्रचार हमारे यहां कर रहे थे । इस धर्म प्रचार के लिए उन्होंने हिन्दी भाषा तथा अन्य प्रांतीय भाषाओं को भी सीखा । धर्म प्रचार के इस कार्य हेतु वे हिन्दू धर्म तथा समाज पर प्रहार कर रहे थे । अतः उन्होंने हिन्दू समाज में व्याप्त ऐसे छिद्रों का अन्वेषण किया जिन पर साधारणतया प्रहार किया जा सकता है । वस्तुतः हिन्दू धर्म में धर्म के नाम पर बहुत सी ऐसी कुरीतियां प्रविष्ट हो गयी थी, जिनका मानव-धर्म से कोई दराज का भी नाता नहीं है । उदाहरण के तौर पर सती प्रथा को लिया जा सकता है । धर्म के नाम पर एक जीवित स्त्री को जल मरने पर विवश कर देना अमानुषिक एवं पाशाविक कहा जाएगा । परन्तु धर्म के नाम पर यह सब कार्य धड़ल्ले से चल रहे थे ।

ऐसे ही वर्णाश्रम व्यवस्था के कारण हमारे यहां जातिवाद का जन्म हुआ । और उसमें मेहनत और परिश्रम करने वाले एक वर्ग को निम्नतम दरज्जा दिया गया । उसे मानवीय गौरव और गरिमा से भी वंचित किया गया । उसकी स्थिति पशु से भी बदतर हो गयी । उस वर्ग पर अनेक प्रकार की निर्योग्यताएं थोपी गयी । जिनके कारण वह कभी भी उभर-उबर कर ऊपर नहीं आ सकता । उस वर्ग के व्यक्ति को छूने मात्र से उच्चवर्गीय हिन्दुओं का धर्म भ्रष्ट हो जाता था । कहीं कहीं तो उनकी परछाइयों से भी बचने का निर्देश मिलता है ।

अतः इसाई पादरियों ने हिन्दू धर्म के धर्म के नाम पर चलने वाले ऐसे स्थानों को पहचाना और उन पर प्रहार करना शुरू किया ।

विशेषतः वे निम्न वर्ग, दलित वर्ग के लोगों के बीच जाकर उन्हें समझाने का प्रयत्न करते थे । कई बार उन्हें इसाई धर्म में दीक्षित होने लिए कई प्रकार के प्रलोभन दिये जाते थे । इसाई धर्म के इस प्रचार को लक्षित करते हुए कुछ बुद्धिमान और समझदार लोगों ने हिन्दू धर्म की मूल तत्वों का अन्वेषण किया और उपरनिर्दिष्ट कुप्रथाओं के खिलाफ आन्दोलन छेड दिये । ऐसे महानुभावों में राजाराम मोहनराय , केशवचन्द सेन, दयानंद सरस्वती, ईश्वरचन्द विद्यासागर, ज्योतिबा फूले, रानडे, पंडित रमा बाई इत्यादि आते हैं । इन महानुभावों के कारण अस्पृश्यता की समस्या को भी उठाया गया । उन्होंने अस्पृश्यता को एक पाप और हिन्दू धर्म पर दूषण और कलंक के समान माना । प्रेमचन्द युग में अनेक उपन्यासकारों में हमें इस समस्या का आंकलन मिलता है । परन्तु इस समस्या का संपूर्णतया निराकरण अभी भी नहीं हुआ है । पहले जो अस्पृश्यता बाह्य, प्रत्यक्ष और शारीरिक थी वह अब अधिक सूक्ष्म, गहरी और मानसिक हो गयी है । अतः प्रेमचन्दोत्तर काल के उपन्यासों में भी हमें ऐसे अनेक उपन्यास प्राप्त होते हैं जिनमें इस समस्या को आंकलित किया गया है ।

§1§ गोली :---

आचार्य चतुरसेन शास्त्री का एक ऐसा उपन्यास है जिसमें सामन्ती व्यवस्था में चल रही दास-दासियों की पीड़ा को आंकलित किया गया है । राजस्थानी रजवाड़ों में अन्तःपुरों में काम करने वाले दास-दासियों को गोले या गोली कहते थे । प्रस्तुत उपन्यास में ऐसी ही एक गोली की कथा को आत्मकथात्मक शैली में कहा गया है । उपन्यास की नायिका चंपा ही वह गोली है , जिसका शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक शोषण उसके मालिक द्वारा निर्दयता से किया गया है । मध्य-काल में गोले-गोलियों को भेंड-बकरियों की तरह बेचा जाता था उन्हें दहेज में दान दिया जाता था । जब किसी गोली को राजकुमारी के

व्यवहार में दहेज के रूप में दिया जाता था तब उसे अपने स्वामी की रखैल या उपपत्नी की तरह रहना पड़ता था । प्रत्यक्षतः उसका विवाह उसकी जाति के किसी गोले से कर दिया जाता था । यह विवाह केवल इसलिए होता था कि उस गोली की संतान का वह कानूनी तौर पर पिता माना जाय । गोली का प्रायः अपने वैधानिक पति से कभी कोई शारीरिक संबंध ही नहीं होता है । वह सामन्त परिवार के किसी व्यक्ति की अंकशायिनी होती है परन्तु पत्नी नहीं कहलाती , पत्नी तो कहलाती है किसी गोले की । इस प्रकार किसी का कोई पर भी अधिकार नहीं । पति का पत्नी पर अधिकार न होता था न पत्नी का अपने पति पर । यहां तक की इनका अपनी संतानों पर भी कोई अधिकार नहीं होता था । और न ही वे अपनी निजी संपत्ति रख सकते थे ।

यह उपन्यास एक ऐसी स्त्री की आत्मकथा है जो किसी राजा की अंकशायिनी होने पर भी उसकी रानी नहीं है , उसकी ब्याहता पत्नी नहीं है, उस राजा से उसको पांच सन्तानें होती हैं और वह उनका पिता न माना जाएगा । पिता माना जाएगा उसका पति , जिसका केवल उसने एक बार स्पर्श किया था । विवाह के मंडप में । इस समय उसकी उम्र 15 वर्ष की थी , वैसे गोले-गोलियों की परिगणना दलित जातियों में नहीं होती, किन्तु उन्हें दलित न माना जाए तो क्या माना जाए ? उनसे बड़ा दलित और कौन होगा ? जो स्त्री अपने पति को पति न कह सके, अपने बेटे को सीने से लगाकर ममता न दे सके, वह दलित नहीं तो और क्या है ? जो स्त्री पुरूष विवाहित होकर भी पति-पत्नी की तरह न रह सके, संतानों को जन्म न दे सके, पुरूष अन्य की संतान का पिता बनने को मजबूर हो और औरत अपने गर्भ के बच्चे को प्यार न कर सके , ऐसे लोग दलित नहीं तो और क्या कहे जाएंगे । [1] अतः मध्यकाल में इस जाति को अछूत न मानते हुए भी यहां उनके शोषण को लक्षित कर उसे दलित वर्ग में रखा गया है ।

इस उपन्यास में जिस गोली की कथा-व्यथा है उसका नाम चंपा है। एक राजकुमारी के विवाह में दहेज के रूप में उसे दिया जाता है। महाराजा का विवाह तो कुंवरी के साथ होता है। परंतु प्रथम रात्रि में वह अपनी नव विवाहिता पत्नी को छोड़कर विवाह में दहेज स्वरूप मिली गोली चंपा के कक्ष में पहुंच जाते हैं। राजकुमारी उसे अपना अपमान समझती है। राजकुमारी को यह बात नागवार गुजरती है कि ब्याहता पत्नी को छोड़कर महाराजा सुहागरात एक गोली के साथ मनावे। वैसे जैसा कि ऊपर कहा गया गोलियों के साथ ऐसे ही सरोकार रहते थे। सामन्त वर्ग के राज-पुरुषों के, राजकुमारी भी यह जानती थी, परन्तु उसे जो बात खटकती है वह यह कि विवाह की प्रथम रात्रि में महाराजा को ऐसा नहीं करना चाहिए। अतः वह इस अपमान का सन्देश अपने पिता पर भेजती है और स्वयं एकान्त कक्ष में जा बैठती है। वह महाराजा से मिलना तक अस्वीकार कर देती है। राजकुमारी के पिता अपनी बेटी के अपमान का बदला लेने आते हैं परंतु राजकुमारी उनको शांत कर देती है। उस एकान्त भवन में राजकुमारी 19 वर्षों तक जीवित रहती है। जीवन के इस उन्नीस वर्षों को वह त्याग और तपस्या में व्यतीत कर देती है। इतने वर्षों में एक भी बार वह महाराजा को नही मिलती है।

उधर चंपा का महाराजा से 21 वर्षों तक संबंध रहता है। जब वह पांचवी बार गर्भवती होती है तब उसे आबू भेज दिया जाता है। वस्तुतः यह एक षडयंत्र था जो महाराजा उनके खवास तथा नर्स नायडू ने मिलकर रचा था। चूंकि अब चंपा की कोई उपयोगिता नहीं रह गयी थी। अतः उसे विष देकर मार डालने की योजना थी। परन्तु चंपा को षडयन्त्र का पता चल जाता है। महलों में खाना बनाने वाले महाराज वासुदेव की सहायता से वह बच जाती है और अपने अधिकार के लिए कोर्ट में मुकदमा दायर कर देती है। खवास और नर्स नायडू को गिरफ्तार कर लिया जाता है। परन्तु अदालत में चंपा महाराजा के पक्ष में बयान देती

है । अतः वे बच जाते हैं । चंपा की स्वामी मुक्ति का बदला महाराजा इस प्रकार चुकाते हैं कि वे चंपा को डयोढ़ियों में भेज देते हैं और चाबुक से उसकी खाल उधेड़वा लेते हैं । चंपा के नाम मात्र के पति किसुन को भी कैद कर लिया जाता है । उसे भी चाबुक से मार-मारकर बेहोश कर दिया जाता है । इन डयोढियों की सृष्टि ही सामन्त वर्ग के लोगों ने अपने विलास-वासना की पूर्ति के लिए की थी । वैसे बाह्यतः उसे अन्तःपुर या जनाना महल कहा जाता था । परन्तु उसकी यांत्रिक स्थिति नरक से भी बदतर होती थी । इन डयोढियों में देख-रेख के लिए खवासों को रखा जाता था । खवासों का कार्य ही यह होता था कि वे नयी - नयी सुन्दर स्त्रियों को फंसाकर राजा की सेवा में प्रस्तुत करें । राजा का शौख पूरा हो जाने पर उन अभागी स्त्रियों के साथ बहुत ही बुरा व्यवहार होता था । जरा सी बात पर उन्हें चाबुक से मारा जाता था और अंधेरी कोठरियों में डाल दिया जाता था । चंपा को भी एक अंधेरी कोठरी में डाल दिया जाता है ।

डयोढी में डाले जाने से पूर्व चंपा आबु में वासुदेव महाराज के यहां रहती है । वे उसे अपनी बेटी की भांति रखते हैं । उनकी पत्नी से भी चंपा को मातृस्नेह मिलता है । जब वह चंपा की सेवा करती है तब चंपा कहती है --" मैंने तो अपने जीवन में नौकरों की सेवायें देखी हैं । बुजुर्गों की प्यार भरी सेवा तो यह पहली बार ही देखी ।" [2] घर के कामों में उनका हाथ बटाने के लिए एक बार चंपा सर्संकोच उनसे निवेदन करती है —" मां जी, मैं शूद्र हूं, गोली हूं, आपकी रसोई में नहीं आ सकती पर काम मुझे भी चाहिए । दाल मैं धो दूंगी, चावल मैं साफ कर दूंगी, बर्तन मैं मांज दूंगी ।" [3] चंपा के कुछ दिन बहुत स्नेहपूर्ण वातावरण में गुजरते हैं । परन्तु अपने अधकार के लिए जब वह अदालत जाती है उसके बाद उस पर मुसीबतों के पहाड़ टूट पडते हैं ।

उसका बच्चा उससे छिन जाता है और एक दिन दरोगा चंपा

के सामने विवाह का प्रस्ताव रखता है । चंपा के यह कहने पर कि उसका विवाह तो हो चुका है, खवास कहता है --" महाराजाधिराज तुझे भूल चुके हैं तेरे पति को मारते मारते मैंने खाल उधेड दी पर वह जोड़ी हुई रकम का पता बता नहीं रहा है वह जेल में सड़ रहा है ।" [4] जब चंपा किसी तरह नहीं मानती तब अन्य दो स्त्रियों की सहायता से दारोगा उस पर बलात्कार का प्रयत्न करता है । उस समय चंपा उसे काट लेती है । इस पर खवास उसे धक्का देता है । जिसके कारण चंपा का शिर फट जाता है और वह बेहोश हो जाती है । परन्तु चंपा बच जाती है । और डयोढी में नारकीय जीवन व्यतीत करती है । उक्त घटनाओं के अतिरिक्त चंपा द्वारा डयोढ़ी में अत्याचार का विरोध करने हेतु एक दल का निर्माण करना, महाराजाधिराज का नयी ठकुराईन से विवाह रचाना, तीन वर्षों बाद उनका दिवंगत हो जाना, राजा का कोई औरस पुत्र न होने के कारण एक सम्बन्धी ठाकुर के युवक को लेकर राजा का घोषित करना, महारानी "चन्द्र महल" के कुचक्र महारानी द्वारा चंपा की पुत्री को हस्तगत करने के प्रयास, चन्द्र महल के कुचक्रों के कारण नये राजा का भी अधिकारों से वंचित हो जाना, महारानी के कारिन्दों की मार से चंपा के प्रति किशुन की मृत्यु , महारानी चन्द्र महल के कुचक्रों और षडयन्त्रों का रहस्य खुलना और उनका दुःखद अन्त जैसी अनेकों घंटनाएं इस उपन्यास में वर्णित हैं ।

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने राजस्थान के छोटे-छोटे रजवाड़ों में पल रही अमानुषी परंपरा को यथार्थ ढंग से आंकलित किया है । सामन्ती परिवेश एवं वातावरण का लेखक ने सजीव वर्णन किया है । गोले-गोलियों के गर्हित एवं नारकीय जीवन को लेकर लिख गया हिन्दी का यह प्रथम उपन्यास है । अतः अपने इसी मौलिकता के कारण हिन्दी उपन्यास साहित्य में इसे एक महत्त्वपूर्ण कृति के रूप में माना जाता है ।

(2) बबूला के पंख :—

आचार्य चतुर्सेन शास्त्री का यह उपन्यास राजनीतिक नेताओं के दोहरे चरित्र एवं व्यक्तित्व पर एक करारा व्यंग्य है । यह उपन्यास राजनेताओं के भ्रष्ट क्रिया-कलापों तथा राजनीति में चलने वाले षडयन्त्रों को यथार्थतः उकेरता है और प्रकारान्तर से यह लोकतंत्र की कमियों को उजागर करते हुए इस तथ्य पर प्रकाश डालता है कि इस तथाकथित लोकतंत्र में कैसे कैसे लोग सत्ता की कुरसी पर बैठ जाते हैं ।

उपन्यास का नायक जुगनू नामक एक व्यक्ति है जो जाति से भंगी है । लेखक ने एक दो स्थानों पर उसके भंगी होने का जिक्र किया है । इस प्रकार इसका नायक एक निम्न जाति का व्यक्ति है पर उसके द्वारा लेखक ने दलित जीवन की विडम्बनाओं का या दलित चेतना का कोई नया विमर्श नहीं दिया है बल्कि जुगनू का चरित्र एक एन्टी हीरो का है । उसमें वे तमाम बुराइयां उपलब्ध होती हैं जो अन्य जाति के दुष्ट प्रकृति के राजनेताओं में होती हैं । इस प्रकार जुगनू की चरित्रगत छवि दलित वर्ग के सम्बन्ध में जो दुराग्रह या पूर्वाग्रह चल रहे हैं उनको अधिक पुष्ट करने वाली है । जुगनू स्वयं को कायस्थ जाति का बताता है और इस प्रकार राजनीति के क्षेत्र में धीरे-धीरे उन्नति करते जाता है और मिनिष्टर तक हो जाता है । यहां एक प्रश्न हो सकता है कि जुगनू अपनी जाति क्यों छिपाता है ? पिछड़ी जाति के शिक्षित लोगों में यह एक प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है कि वे अपनी Surname बदल देते हैं या ऐसी रख देते हैं जिससे अपनी जाति का पता न चले । "अपने अपने पिंजडे" के लेखक मोहनदास नैमिसराय इसके उदाहरण हैं । धर्मवीर भारती भी पिछडी जाति के हैं यह बात अब शनैः शनैः प्रकट हो रही है । [5] बहुत से जाति के लोग शर्मा, वर्मा, आर्य, परम, पटेल, देसाई, चौहाण, सोलंकी, आदि Surname लगाते हैं । यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि दलित जाति के लोग प्रायः क्षत्रिय जाति की Surname अंगीकृत कर लेते हैं

और इस प्रकार क्षत्रियों तथा दलितों में नाम के आधार पर भेद करना कठिन होता जा रहा है । परन्तु यदि हम इस प्रवृत्ति के कारणों का विश्लेषण करें तो हमें ज्ञात होगा कि इसके मूल में वह सामाजिक दुराग्रह दृढ़मूल है कि निम्न जाति का व्यक्ति योग्य हो ही नहीं सकता और वह उन्नति कर ही नहीं सकता । यदि कोई निम्न जाति का योग्यता के आधार पर उन्नति करना चाहता है तो कदम-कदम पर उसे अनेक अवरोधों का सामना करना पड़ता है । प्रताड़नाओं और अपमानों से गुजरना पड़ता है । जो पथ उच्चवर्ण के लोगों के लिए सुकर होता है वही पथ इस वर्ग के लिए कंटकाकीर्ण हो जाता है । जिसे उच्च वर्ण के लोग सहजता से उपलब्ध कर लेते हैं उसके लिए निम्नवर्ग के व्यक्ति को भयंकर संघर्षों से गुजरना पड़ता है क्योंकि निम्नवर्ग के व्यक्ति की उन्नति इन तथाकथित उच्चवर्ण के लोगों को फूटी आंखों भी नहीं सुहाती और वे येनकेन प्रकारेण उसे असफल करने के प्रयत्नों में जुट जाते हैं । इस दुराग्रह और जातिगत अवधारणा के कारण ही जुगनू को भी अपनी जाति छिपानी पड़ती है । यदि वह भंगी के रूप में स्वयं को परिचायित करता तो मंत्रीपद तक पहुंचना उसके लिए दुष्कर होता ।

जुगनू का चरित्र एक दुष्ट और भ्रष्ट राजनेता का चरित्र है और ऐसे लोग कहां नहीं होते ? परन्तु एक पिछड़ी जाति का व्यक्ति जब ऐसा निकल जाता है तब लोगों को उस पर फिकरे कसने के बहाने मिल जाते हैं । वे उसकी दुष्टता को बढ़ा-चढ़ाकर उस आधार पर उसकी जाति को गरियाने लगते हैं । इस प्रकार जुगनू का चरित्र दलित चेतना को आगे नहीं बढ़ाता बल्कि उसे दोषी और धुंधली बनाता है । इधर हम देख रहे हैं कि हमारे प्रायः सभी नेता राजनीतिक भ्रष्टता और अदाचार में आकंठ डूबे हुए हैं । परन्तु मीडिया उन नेताओं के दुष्कान्डों पर वो अधिक उजागर करता है जो दलित जातियों से सम्बद्ध हैं ।

यहां जुगनू को एक अमरबेल की तरह बताया है जो जिसका सहारा लेती है उसे ही नष्ट कर देती है । जुगनू सर्वप्रथम अपने मित्र

शोभाराम को नष्ट करता है जिसके सहारे वह मिनिस्टर के पद तक पहुंचा था । शोभाराम की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी पदमा को वह अपनी वासना का शिकार बनाता है । पद्मा के पश्चात् गोमती नामक एक युवती को वह अपनी वासना की चपेट में ले लेता है । गोमती आत्महत्या कर लेती है । मंत्री होने के उपरान्त जुगनू एक संभ्रान्त कुलीन कन्या शारदा से विवाह करना चाहता है । विवाह की सारी तैयारियां हो जाती है परन्तु विवाह पूर्व कन्या पक्ष को जुगनू की जाति का पता चल जाता है और वे विवाह सम्पन्न कराने से मना कर देते हैं । अपमानित जुगनू विवाह के मंडप से भाग खड़ा होता है ।

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में चतुर्सेन शास्त्री स्वयं जातिगत दुराग्रह से मुक्त नहीं हैं । बबुला के पंख के प्रतीक द्वारा कदाचित् यही प्रस्थापित करना चाहता है कि जुगनू एक बबुला है और वह हंस नहीं हो सकता । एक बगला हंस बनने चला था पर अन्ततः उसकी कलाई खुल जाती है । कुछ ऐसा ही निष्कर्ष इस उपन्यास में लेखक देते हैं ।

§3§ उदयास्त :---

यह उपन्यास भी आचार्य चतुर्सेन शास्त्री का ही है, परन्तु जहां "बगुला के पंख" उपन्यास में जुगनू भंगी को चरित्र नायक के रूप में प्रस्तुत करने के बावजूद उसमें दलित चेतना नहीं है । बल्कि यूं कह सकते हैं कि दलितों के विरीत उसमें अनेक पूर्वाग्रहों का समावेश है । परन्तु उदयास्त उपन्यास में शास्त्री जी की परिवर्तित दृष्टि का परिचय मिलता है । इस उपन्यास में प्रगतिशील आयामों को लक्षित किया जा सकता है । इसका नायक मंगतू चमार नामक एक दलित जाति का व्यक्ति है । जो जाति - पांति की असमानता को लेकर पुरानी सामन्ती ताकतों से संघर्ष करता है । इसमें स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक परिवेश को उकरा गया है । चार-पांच का यह संघर्ष मंगतू चमार और राजा रूद्र प्रताप नारायण सिंह के बीच छिड

जाता है । स्वतंत्रता के बाद रियासतें समाप्त हो गयी थी । परन्तु सामन्ती अकड की ऐंठ अभी पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है । राजा रूद्र प्रताप सिंह मंगतू चमार से बेगार लेना चाहता है । जिसके लिए मंगतू चमार स्पष्टतया मना कर देता है । इतना ही नहीं राजा साहब द्वारा यह पूंछे जाने पर कि तेरे बाप दादा तो बेगार करते थे, तो फिर तू क्यों नही करता ? राजा साहब के इस प्रश्न के उत्तर में मंगतू निर्भीक और निश्चल स्वर में उत्तर देता है --" महाराज के बाप दादे डाकेजनी के पेशा करते थे, आप क्यों नहीं करते ? [6] मंगतू के इस उत्तर से राजा साहब आग - बबूला हो उठते हैं और उसे जूते और गोली मारने का आदेश देते हैं किन्तु मंगतू की दृढ़ता को देखकर किसी की हिम्मत नहीं पड़ती । राजा साहब के दीवान मंगतू को ~~सलाह~~ सलाह देते हैं कि वह अपनी इस नादानी के लिए राजा साहब से क्षमा-याचना कर ले । परन्तु मंगतू टस से मस नहीं होता । वह माफी मांगने से साफ इन्कार कर देता है । तब राजा साहब खुद बंदूक लेकर उठ खड़े होते हैं । कुछ समय राजा साहब का पुत्र सुरेश बीच-बचाव करता है । सुरेश ने बनारस युनिवर्सिटी से बी.ए. किया है । वह मंगतू को शाम को फिर मिलने की सलाह देकर अपने घर भेज देता है ।

शाम के वखत मंगतू फिर सुरेश को मिलता है । सुरेश भी दीवान साहब की बात को दोहराता है कि वह राजा साहब से माफी मांगकर इस टंटे को समाप्त कर दे । परन्तु मंगतू दृढतापूर्वक पूंछता है कि वह इस बात की माफी मांगे, उसका कोई अपराध नहीं है । मंगतू की बात पर सुरेश कहता है कि तुम्हें इसलिए माफी मांगनी चाहिए कि तुम जात के चमार हो और महाराजा तुम्हारे मालिक हैं । [7] सुरेश की इस बात पर मंगतू उखड़ जाता है और जात-पांत के भेदभाव को नकारते हुए वह कहता है --" जात-पांत का तो यहाँ कोई सवाल ही नहीं है, सवाल है नागरिक अधिकारों का और परस्पर के व्यवहार का ।... महाराज और दीवान साहब मुझसे माफी मांगे और भविष्य में ऐसी गलती न होगी , यह बचन दें, तो मैं केवल आपके लिहाज से उन्हें माफ कर दूंगा ।" [8] मंगतू

की इस बात को सुनकरक्ष सुरेश का सामन्ती खून भी उबल उठता है और वह मंगतू क्ष से कहता है कि राजा साहब के माफी न मांगने पर वह उनका क्या बिगाड़ लेगा ? सुरेश के इस प्रश्न के उत्तर में मंगतू कहता है --" "मैं कानून की शरण में जाऊंगा महाराज औरक्ष दीवान साहब ने मुझे डराया धमकाया और गालियां दी है । इसका अदालत में दावा दायर करूंगा ।"[9]

इस प्रकार यहां हम देखते हैं कि स्वतंत्रता के पश्चात, कहीं कहीं पिछड़ी जातियों में चेतना की एक लहर उत्पन्न हुई है और सौ वर्ष पूर्व विवेकानन्द स्वामी द्वारा की गयी भविष्यवाणी कुछ कुछ सत्य प्रतीत होती है कि आने वाले युग में सत्ता के सूत्र शूद्रों के हाथ में जाएंगे । [10]

एक अन्य पात्र सत्तार मियां के द्वारा भी मंगतू को को सलाह दी जाती है कि वह उन बड़े लोगों से मुकाबला न करे । सत्तार - मियां की सलाह पर मंगतू निर्भीक होकर कहता है --" हमारे करोड़ों पर ये लोग सदियों से जुल्म करते आये हैं । हम लोग जो कल तक अछूत थे आज हरिजन बन गये हैं, सदियों से पद-दलित हैं । अब तो हमें उभरना होगा, अपने ही बलबूते पर ।" [11] मंगतू के इस प्रत्युत्तर में नये युग की दलित चेतना के स्वर बोल रहे हैं ।

सुरेश की पत्नी प्रेमिला को जब मंगतू के साहस का पता चलता है तब उसका भी उच्चवर्गीय खून बोल उठता है कि एक चमार की यह हिम्मत ? इसके जबाब में सुरेश कहता है —" हिम्मत उसकी नहीं है, समय ने उसे दी है । शक्ति तो समाज के गठन में है । हम लोगों की कभी यह शक्ति थी कि हम उन्हें पशु और कीड़ें-मकोड़ों की तरह रखते थे और वे हर तरह हमारे नीचे रहते थे , अब वह शक्ति का स्थानान्तरण हो गया है ।" [12]

मंगतू राजा साहब पर मानहानि तथा डराने-धमकाने का फोजदारी दावा दायर कर देता है । इस मुकदमें के कारण न केवल लखनऊ कोर्ट में अपितु समूची रामगढ रियासत में धूम मच जाती है । जिस दिन कोर्ट में पेशी होने वाली थी उस दिन कांग्रेस तथा हरिजन महासभा के

तत्त्वावधान में मंगतू का जुलूस निकाला जाता है । और हरिजनों के मानवाधिकारों के लिए तरह-तरह के नारे लगाये जाते हैं । मंगतू के पक्ष में शनैः शनैः लोकमत तैयार होता जाता है । ऐसे में राजा साहब पर एक और कुठाराघात होता है । मंगतू को राजा साहब के विरोध में राज्य सभा के सदस्य के रूप में खड़ा कर दिया जाता है और मगतू को जिताने के लिए नेता लोग उसके प्रचार में लग जाते हैं । रियासत के अन्य कांग्रेसी नेता शुक्ल को मंगतू के पक्ष में प्रचार करते हुए देखकर एक स्थान पर सुरेश कहता भी है —" आप दादा के विरूद्ध प्रचार कर रहे हैं । आपके साथ तो दादा ने सदा अच्छा सलूक किया था ।" [13] सुरेश के इस प्रश्न के उत्तर में शुक्ल जी कहते हैं --" देश की सेवा मेरा प्रथम कर्तव्य है, इसलिए लाचार हूं । यह मेरी जातीय लडाई नहीं , कर्तव्य की लडाई है ।" [14] शुक्ल जी की इस बात को सुनकर सुरेश व्यंग्य करते हुए कहता है --" तो आप समझते हैं कि चमार को राजभवन की कुर्सी पर बिठाकर आपकी देशभक्ति का कर्तव्य क्या पूरा हो जाएगा... क्या मंगतू चमार महाराजा से ज्यादा लियाकत या हैसियत रखता है ।" [15]

शुक्ल जी और सुरेश के इस वार्तालाप से सामन्तवादी दृष्टि - कोण प्रत्यक्ष होता है । सामन्त वर्ग के लोगों में दलित जातियों के प्रति कितनी घृणा है यह तथ्य भी यहां उजागर होता है ।

ठीक इसी बिन्दु पर भारतीय राजनीति का एक घिनौना पक्ष सामने आता है । धन के द्वारा कांग्रेसी नेताओं को खरीद लिया जाता है । परिणाम स्वरूप मंगतू को अपना नाम वापस लेना पड़ता है । इस प्रकार मंगतू को राजनीतिक क्षेत्र में पीछेहट करनी पड़ती है । परन्तु उसके हौंसले अभी बुलंद हैं । और इसका जीवन और संघर्ष वैसे ही जारी या बरकरार रहते हैं । फलतः लाख कांग्रेसी नेताओं के समझाने पर भी कोर्ट से अपना मुकदमा वापस नहीं लेता है । पहले कांग्रेसी नेता मंगतू के पक्ष में थे, परन्तु धीरे-धीरे वे खिसकने लगते हैं । और मंगतू यह मुकदमा केवल अपने बलबूते पर लड़ता है । इस बीच में राजा साहब मंगतू को मरवा -

डालने के लिए भी कोशिशें करते हैं, परन्तु असफल रहते हैं । इसकी भी शिकायत कोर्ट में कर देता है । जिसके कारण राजा साहब को कोर्ट में हजार हजार के दो मुवक्कले भी देने पड़ते हैं । अन्ततः कोर्ट मंगतू के पक्ष में अपना फैसला सुनाती है । राजा साहब को पचास हजार रूपये का जुर्माना तथा जुर्माना न अदा करने पर एक माह की कैद सुनायी जाती है । राजा साहब इस सदमें को नहीं बरदास्त कर पाते हैं और चार दिन के उपरान्त ही उनका चि निधन हो जाता है । मंगतू कुंवर साहब के यहां शोक प्रदर्शन करने भी नहीं जाता । इस पर आनंद स्वामी के समझाने पर स्वयं सुरेश मंगतू के घर जाता है और कहता है --" मंगतू ! मैं अपने स्वर्गीय पिता जी की ओर से तुमसे माफी मांगने आया हूँ । उन्होंने तुम्हारे साथ जो अपमानजनक व्यवहार किया था, उससे मैं बहुत दुःखी हूँ अब तो वे नहीं रहे । वह बड़े थे तुम माफ कर सको तो माफ कर देना । मेरी तरफ से कोई गाठ मन में न रखना । मैं तुम्हें अपना छोटा भाई समझ के यहां आया हूं ।" [16]

सुरेश की यह बात पर भी जब मंगतू जडवत खडा रहता है तब मंगतू की पत्नी उसे फटकारती है । पत्नी की फटकार से मंगतू रात में आत्मविश्लेषण करता है और सोचता है कि उसके कारण राजा रूद्र प्रताप सिंह का निधन हो गया । उसका हृदय हाहाकार करने लगता है और आंखों से पश्चाताप के आंसू बहने लगते हैं । दूसरे दिन मंगतू अपनी बीबी बच्चों सहित कुंवर सुरेश सिंह के पैरों पड़कर क्षमायाचना कर लेता है । कुंवर साहब उसे जाजम पर बिठाते हैं और उसके बच्चे को गोद में लेकर प्यार करते हैं । इतना ही नहीं खवास को आदेश देते हैं कि वह मंगतू की औरत को जनाजे में ले जाय । इस प्रकार जो कार्य राजा रूद्र प्रताप सिंह अपनी सत्ता, शक्ति और संपत्ति की रूह से न करा सके वह कार्य सुरेश ने जमाने को रूख को समझते हुए नम्रता प्रदर्शन द्वारा करवा लिया ।

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में आचार्य चतुर्सेन शास्त्री ने जिन

घटनाओं का आलेखन किया है वह यथार्थ की कसौटी पर तत्कालीन परि - प्रेक्ष्य में नहीं उतरती । पर हां उसमें शास्त्री जी ने आने वाले युग के तेवरों को जरूर इंगित कर दिया है ।

§4§ कब तक पुकारूं :---

डॉ० रांघेय राघव ~~कम~~ मार्क्सवादी विचारधारा के लेखक हैं । अतः उनके उपन्यासों में समाजवादी यथार्थवाद का आकलन उपलब्ध हो उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है । "कब तक पुकारूं" उपन्यास इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है । इसमें दलित शोषण के नाना आयामों को उकेरते हुए उन्होंने दलित चेतना को प्रस्थापित करने का कार्य किया है । हिन्दी की औपन्यासिक आलोचना में इस उपन्यास का ~~x~~ एक विशिष्ट स्थान है । इस वृहदकाय उपन्यास में प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास को एक नया आयाम दिया है । उपन्यासकार ने उसके आमुख में स्पष्ट किया है --" युग प्रेमचन्द से अब आगे है और केवल शोषण का आर्थिक पहलू देखना काफी नहीं है । शहरों में बैठने वाले आधुनिक नजरिये से सबकुछ देख सकते हैं, पर असली भारत गांवों में है, जो अब भी मध्यकालीन विश्वासों में ग्रस्त है । वे विश्वास मध्यकालीन आर्थिक व्यवस्था से नियंत्रित हैं । मैंने उनको प्रकट करने का प्रयास किया है । हो सकता है कुछ विशेषताएं कर्नट की पत्तल , मेहतर नहीं उठाते, न बैडनी §बेडिया§ की पत्तर उठाते हैं, पर ठाकुर उसी बैडनी के साथ एक प्याले में शराब पीते हैं ...सारी व्यवस्था अपने अन्ध - विश्वासों पर जमी हुई है ।" [17]

प्रस्तुत उपन्यास में डॉ० रांगेय राघव ने राजस्थान की कर्नट जाति के यथार्थ का विषय एवं सूक्ष्म-समग्र चित्रण किया है । कर्नटों को एक जरायम पेशा-कौम माना जाता है । पुरूष दिन में खेल तमासे दिखाते हैं और रात्रि में चोरी चकारी करते हैं । इसमें उनकी स्त्रियां भी सहायक होती हैं । गांव के जमींदारों, मुखियाओं तथा पुलिस के दारोगा जैसे

अधिकारियों से उनके यौन सम्बन्ध होते हैं । और इस जाति की चेतना इतनी हर ली गयी है कि उनके पुरूषों को भी इस घृणित कार्य में कोई अनौचित्य नहीं दिखता है । उपन्यास का नायक सुखराम एक कर्नट है , परन्तु अन्य कर्नटों से वह थोड़ा भिन्न है , क्योंकि उसकी चेतना में यह बात बैठी हुई है कि उसका पिता कोई कर्नट नहीं पर ठाकुर है और वह उसकी रगों में ठाकुर का खून बह रहा है । अतः उसे कर्नटों की इस हीन अवस्था और जिन्दगी से नफरत होने लगती है । एक स्थान पर सुखराम आक्रोशभरे शब्दों में कहता है —" यहां एक आदमी देवता है, पर हम तो कमीन हैं । वे बड़े लोग क्यों करते हैं ऐसा ? क्या वे अपने धन और हुकूमत के लिए अत्याचार करने में नहीं कांपते ? तू (सुखराम की पत्नी प्यारी) चुप है । तू जबाब नहीं देती । नट की छोटी पर जवानी आती है और गन्दे आदमी उसे बेइज्जत करते हैं, फिर भी रण्डी की तरह जिये जाती है । मर क्यों नहीं जाती ? हम सब मर क्यों नहीं जाते ?" [18]

खेल दिखाते समय सुखराम की पत्नी प्यारी पर दारोगा का दिल आ जाता है और वह उसे प्रेमलीला के लिए अपने यहां बुलाता है । प्यारी सुखराम के डर से इन्कार कर देती है परन्तु प्यारी के इस इन्कार से दारोगा का कोप कर्नटों पर टूट सकता है इसलिए स्वयं प्यारी की मां उसे समझाती है --" अरी यह तो औरत का काम है, उसे बताने की जरूरत ही क्या है ? .. उसमें भला-बुरा क्या ? कौन नहीं करती ? " [19]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का ऐतिहासिक उपन्यास "चारू चन्द्र लेख" में कारू नटों का वर्णन मिलता है । नारी माता और मैना इस जाति के हैं । वहां द्विवेदी जी ने उनकी सामाजिक स्थिति को सम्मानजनक स्थिति में निरूपित किया है । यह सम्भव हो सकता है कि आज के कर्नट उन्हीं कारू नटों के वंशज हों और समय के साथ शनैः शनैः वर्तमान हीन दशा को प्राप्त हुई हो । डॉ0 ज्ञानचन्द्र गुप्त के अनुसार

इस उपन्यास में "उत्पीडन एवं शोषित जन जातियों, विशेष कर्नटों की व्यथा-कथा, आर्थिक शोषण, तदजनित सामाजिक नैतिक मान्यताओं एवं उनके बीच से उभर रहे वर्ग संघर्ष को रूपायित करने का यथार्थवादी दृष्टि से प्रयत्न किया गया है।" [20]

प्रस्तुत उपन्यास में रांगेय राघव ने ग्रामीण जीवन को एक - दूसरे ही स्तर पर रखा है। जिस प्रकार नागार्जुन ने "वरूण के बेटे" में मछुवारों की व्यथा को व्यक्त किया है, ठीक उसी प्रकार यहां लेखक ने राजस्थान के कर्नटों के आर्थिक शोषण तथा सामाजिक पतन को चित्रित किया है। उपन्यास के सन्दर्भ में रांगेय राघव का यह वक्तव्य ध्यातव्य है — "इस कथा की वर्णनात्मकता मेरी है परन्तु तथ्य उसी (अ सुखराम) के दिये हुए हैं।" [21] इससे प्रतीत होता है कि लेखक ने एक सुनी हुई कहानी के आधार पर यह उपन्यास लिखा है। "उपन्यास राजस्थान और ब्रज की सीमा पर बसे गांव और वहां के लोगों के अज्ञात, अशिक्षा, अंधविश्वास, गरीबी और शोषण को उनके रीति, रिवाजों, परंपराओं के साथ सामने लाता है।" [22]

उपन्यास का संक्षिप्त कथासार इस प्रकार है — उपन्यास के नायक सुखराम की मां, नटनी थी। पिता भी कर्नट था। पर वह अपने आपको अधूरे किले के स्वामी का वंशज मानता था। उसके पिता (सुखराम के दादा) वंशच्युत होकर कर्नट बन गये थे। कुलाभिमान की इस बात को लेकर सुखराम के माता-पिता के बीच में प्रायः झगड़े होते रहते हैं। जिसके परिणाम स्वरूप उन दोनों की आकस्मिक एक अकालमृत्यु होती है। फलतः सुखराम इसीला... कर्नट और उसकी पत्नी के संरक्षण में पालित-पोषित होकर बड़ा होता है। सुखराम भी दूसरे कर्नटों की तरह विचरणशील जीवन को व्यतीत करता है। सुखराम को कर्नटों की जिंदगी से नफरत है क्योंकि यह सर्वथा उपेक्षित जनजाति है। इस जाति को अपराधजीवी करार दिया गया है। कंजर, सांसी, मोग्या, बाबरी आदि

जातियों की भांति कर्नटों को भी एक जरायम पेशा जाति माना गया है । उच्चवर्गीय समाज में इन जातियों के लोगों साथ गालीवाची शब्द प्रयोग होते हैं ।

"इसीला" के परिवार में रहते हुए उसकी बेटी प्यारी सुखराम को अपना मरद बना लेती है । अपनी मूर्खता के कारण सुखराम और प्यारी रूस्तमखां के चुंगल में फस जाते हैं और प्यारी को रूस्तमखां के यहां रहना पड़ता है । उन दिनों में सुखराम की भेंट कजरी नामक एक दूसरी तेज-तर्राट कर्नटी से होती है ।

सुखराम का व्यक्तित्व बहुरंगी और आकर्षक है । वह वीर, दिलेर, बहादुर और संघर्षशील है । परन्तु परिस्थितियों के सामने उसे परास्त और अपमानित होना पड़ता है । प्यारी और कजरी रूस्तमखां के अत्याचारों से उत्पीडित होकर एक दिन उसकी हत्या कर देती हैं । दूसरी तरफ धूपो नामक चमारिन के साथ बांके तथा दो ठाकुर बलात्कार करते हैं । बांके रूस्तमखा के घर जा छिपता है । इस घटना से विक्षुब्ध होकर चमारों की भीड बांके से बदला लेने के हेतु रूस्तमखां के मकान की ओर बढ़ती है । और निरोती नामक एक व्यक्ति रूस्तमखां के मकान को आग लगा देता है । बांके और रूस्तम की लाशें उसमें जल जाती है । कजरी और प्यारी को साथ लेकर सुखराम भागते हुए कर्नटों के एक समुदाय में सामिल हो जाता है । वहां बीमारी से प्यारी की मृत्यु हो जाती है ।

रूस्तमखां और बांके वाली घटना के बाद पुलिस का कहर चमारों पर टूट पड़ता है । कई बेकसूर और निर्दोष चमारों को पकड़कर हिरासत में लिया जाता है । और उन पर तरह-तरह के अत्याचार होते हैं । महिलाओं की इज्जत लूटी जाती है । जब सुखराम को इस बात का पता चलता है तब उसका खून खौल उठता है और इस अत्याचार का प्रतिशोध लेने के लिए वह डाकुओं के दल में सामिल हो जाता है । डाकुओं और पुलिस के बीच में जो मुठभेड होती है उसमें सिपाही मारे जाते हैं । एक बार उसी डाकू दल का सरदार उस क्षेत्र के पोलिटिकल एजेन्ट सायर की बेटी

सुशांक को पकड़ लेता है और उस पर जबरदस्ती करना चाहता है । अकस्मात सुखराम वहां पहुंच जाता है और पिस्तोलधारी डाकू सरदार के साथ वह अकेले हित्था मुकाबला करता है । और सुशांक को उसके पंजे से मुक्त करा लेता है । सुखराम की इस बहादुरी को देखते हुए , उसके पुरस्कार स्वरूप पुलिस के अत्याचारों के विरूद्ध उसे अभयदान मिलता है और साथ ही पोलिटिकल एजेन्ट सायर के यहां उसे नौकरी भी मिल जाती है । यहां उपन्यास की कथा एक नया मोड़ लेती है । सुशांक ने युरोपियन समाज तो देखा था परन्तु भारत उसके लिए सर्वथा एक रहस्य था । उसे इस देश की हर बात में रहस्य नजर आ रहा था । सुखराम ने जब उसे अधूरे किले का किस्सा सुनाया तो वह खुद को पूर्व जन्म की ठकुराइन समझने लगी । इस बीच में सुशांक के साथ एक हादसा हो जाता है । लोरेन्स नामक एक अंग्रेज सुशान के साथ बलात्कार करता है । सुखराम और पोलि - टीशियन एजेन्ट सायर दोनों द्वारा लोरेन्स की बुरी तरह से पिटाई होती है । सायर तो लोरेन्स को मार ही डालना चाहता था, परन्तु सुखराम उसे समझाता है । लोरेन्स द्वारा किये गये बलात्कार के परिणाम - स्वरूप सुशान मां बनती है । सुखराम और कजरी पोलिटिकल एजेन्ट सायर को बचन देते हैं कि वे सुशान के बच्चे को पालेंगे । सायर जब इस कार्य के लिए सुखराम को पैसे देने की बात करता है तब वह साफ इन्कार कर देता है । बम्बई में सुशान एक सुन्दर बच्ची को जन्म देती है । यहां सुखराम के साथ एक दुर्घटना होती है । बम्बई में कजरी की मृत्यु हो जाती है । सुखराम सुशान की बच्ची को लेकर अपने समाज में लौट आता है और सुशान अपने हृदय पर पत्थर रखकर इंग्लैण्ड चली जाती है । सुखराम उस बच्ची का नाम चन्दा रखता है और उसका पालन-पोषण बेटी की तरह करता है । जब चन्दा यौवन की दोहरी पर कदम रखती है तो गांव के ठाकुर के बेटे नरेश से प्रेम करने लगती है । नरेश भी उसे खूब चाहता है । दोनों को प्यार ऊंच-नींच और जाति-पांति की कठोर दीवारों को नहीं मानता । चन्दा भी अपनी मां सुशान की भांति स्वयं को ठकुराईन समझती है । अधूरे

किले में पहुंचकर चन्दा का व्यवहार बदल ही जाता है । वह अनजाने स्थानों को भी इस तरह देखती है जैसे वह उन्हें पहचानती हो । एक दिन अकस्मात 15 वर्ष बाद सायर का एक पत्र सुखराम के नाम आता है जिससे चन्दा को ज्ञात हो जाता है कि वह नटनी नहीं एक अंग्रेज मां की बेटी है । फलतः वह स्वयं को नरेश के सर्वथा योग्य समझती है । चन्दा एक बार फिर अधूरे किले में पहुंच जाती है । सुखराम उसे खोजते हुए वहां पहुंचता है । सुखराम देखता है कि चन्दा बिल्कुल ठकुराइन-सा व्यवहार कर लेती है । चन्दा के इस व्यवहार से सुखराम को यह विश्वास हो जाता है कि ठकुराईन की आत्मा बार-बार जन्म लेती है और चन्दा में भी वही आत्मा है । अतः सुखराम ठकुराईन की आत्मा को मुक्त करने के लिए चन्दा की हत्या कर देता है । और थाने में जाकर अपने जुर्म का इकबाले जुर्म कर लेता है ।

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास समानान्तर दो कथाओं को लेकर चलता है । पोलिटिकल एजेन्ट सायर और सुसान को लेकर जो कथा चलती है उसमें हम सुखराम के चरित्र को एक ऊँचाई पर देख सकते हैं । परन्तु इसके साथ ही साथ कर्नटों का जीवन दिया गया है । उसमें कर्नटों की पारिवारिक व्यवस्था , जाति-व्यवस्था, स्त्री-पुरूष संबंध, यौन स्वच्छन्दता, अशिक्षा, अज्ञान, वैयक्तिक स्वतंत्रता, दीनता, उपेक्षा, पुलिस-उत्पीडन, अत्याचार, अंध विश्वास, नवीन चेतना का अभाव इत्यादि आयामों का लेखक ने सूक्ष्म यथार्थ एवं हृदयग्राही आंकलन किया है । नटों के कौशल, साहस और सौर्य का भी अच्छा परिचय दिया है ।

यौन स्वच्छंदता कर्नटों के जीवन की एक विशेषता है । वे इसमें सामाजिक वर्जनाओं को नहीं मानते । सतीत्व का भी नट स्त्रियों में कोई विशेष महत्व नहीं है । एक स्थान पर प्यारी सुखराम को कहती है —" देख, मैं भंगिन, चमारिन नहीं, जो मरद की गुलाम बनकर रहूं । मैं तो खेलूंगी । पर मेरा मन तो तेरा है । जिस दिन मन तुझसे हट

जाएगा , मैं तुझे छोड़ चली जाऊँगी ।" [23] कर्नट स्त्रियों को अपने मरदों के एब भी अच्छे लगते हैं । जो कर्नट अपनी औरत को न पीटे, जो चोरी न करे , जो जुआ न खेले, जो गाली न बोले उसे वे मर्द नहीं मानती । प्यारी की मां शोनू अपने पति इशिला से सुखराम के विषय में कहती है -- " वह शराब पीता है तो पीते में हिचक जाता है । किसी की लडकी के साथ एक दिन भी नहीं पाया गया । कौन-सा जवान है जो यह नहीं करता । वह गाली भी नहीं देता जो मर्दानगी की निशानी है । चोरी वह नहीं करता, जुआ वह नहीं खेलता ।" [24] अभिप्राय यह कि कर्नटों की जीवन शैली के अनुसार सुखराम मर्द नहीं है ।

सोना और इसीला की इन बातों को सुनकर सुखराम सोचता है --" क्यों मैं उनसा नहीं हूं जिनके बीच में रहता हूं । मैं क्यों नहीं नाचता, मैं क्यों नहीं गाता ? सोलह साल की उम्र तक मैं क्यों भूला रहा हूं । ~~अब वह कंजरों में~~ मेरी गोद में प्यारी सो रही है । वह मेरी बहू है । क्यों वह कंजरों में जाती है ? मैं उसे छूरियों से गोद कर फेंक दूंगा, ससुरी मुझे छोड़कर कहीं गयी तो ।" [25]

नटों में स्त्री-पुरूष दोनों ही कमाते हैं । स्त्री-पुरूष से कुछ अधिक कमाती है । खेल-तमासे में भी वह भाग लेती है और शरीर बेंचकर भी कुछ कमा लेती है । इस कारण से पुरूष को छोड़कर या उसके साथ रहने में वह स्वतंत्र होती है । नट समाज में स्त्री को पुरूष से टेढी नहीं समझा जाता । यदि पुरूष स्त्री को पीट सकता है तो स्त्री भी हाथ उठा सकती है । एक स्थान पर सुखराम कहता है ---" मैं उसे रस्से से मारता । नील पड जाती । पर फिर मुझसे लिपटकर कहती -- बैल समझकर मार ले निगोडे । पर नीपूते ~~x~~ तेरी लुगाई हूं तभी न मारता है ? मार ले । मैं क्या तेरी मार से डरती हूं ... मैंने उसे मारा पर उसे गुस्सा आ गया । उसके हाथ पैर पर जूता पड़ा । उसने खींचकर मारा ।" [26]

इस उपन्यास में डॉ0 रांगेय राघव ने पुलिस द्वारा कर्नटों पर अमानुषी अत्याचार होते हैं उसका भी मर्मस्पर्शी चित्रण किया है । एक

बार सुखराम और प्यारी किसी गांव में करतब दिखाने गये । पुलिस के दारोगा ने प्यारी को देख लिया और उस पर उसका दिल आ गया । थाने से प्यारी के लिए बुलावा आ गया । सुखराम प्यारी को मना करता है । इस प्रतिरोध के कारण सुखराम की पुलिस द्वारा खूब पिटाई होती है । वह बेहोश हो जाता है । सवेरे प्यारी जब उसके सिर में खून देखती है तो प्यारी की मां सोनू कहती है कि जैसे यह कोई साधारण बात हो —" हां री जूते में कीलें रही होंगी । तेरे बाप के ऐसे बीसियों निशान पड़े होंगे ।" [27] इस प्रकार नट पुरूष यदि औरत की इज्जत बचाने का प्रयत्न करता है तो उसे जूतों की मार पड़ती है । इसलिए नट स्त्रियों में अस्मिता की परिभाषा ही कुछ और है । सोनू कहती है — "औरत का काम औरत का काम है । इसमें भला बुरा क्या ? नहीं तो मार-मार कर खाल उधेड देगा दारोगा । और तेरे बाप और सुखराम दोनों को जेल भेज देगा । फिर कमेरा न रहेगा तो क्या करेगी ? फिर भी तो पेट भरने के लिए ही तो करना होगा ?" [28]

सोनू की बातों को सुनकर प्यारी सुखराम को समझाती है — —"तू बुरा क्यों मानता है । औरत के काम में औरत को शरम नहीं होती ? मरद के काम से क्या मरद शरम करता है ? मेरी-तेरी चाहना है । संग तो तेरे ही रहूंगी ।" [29] यहां सोनू और प्यारी के कथन में नट स्त्री की सामाजिक, आर्थिक विषमताओं को उकेरा गया है । नट नट समाज की निगाह में पुलिस का सिपाही बहुत बड़ा आदमी होता है — राजा जैसा और वे स्वयं चिट्टे जैसे होते हैं । वह जैसे ही आता है नट लोग दौड़कर छिप जाते हैं । सुखराम के शब्दों में —" वह (पुलिस) जब चाहे जिस नटनी, कंजरिया को पकड़ ले जाता है । वह हमें वह चोर कह देता था । फिर हम लोग बेंतों से पिटते थे । कभी-कभी गुड के पानी के छींटे दे दिये जाते थे । जिससे छींटे लग जाते थे और देह सूज जाती थी ।" [30]

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने दलित जातियों पर सवर्ण वर्ग के लोग और पुलिस द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों का मार्मिक ढंग से वर्णन किया गया है । पुलिस निर्दोष दलित वर्ग के लोगों पर अत्याचार करती है । और दूसरी तरफ उच्च वर्ग के लोगों को संरक्षण प्रदान करती है ।

उपन्यास का नायक सुखराम लेखक का चिकित्सक भी है । जिस रोग का इलाज बड़े-बड़े डॉक्टर नहीं कर पाते उसका इलाज वह सुखडियों के माध्यम से करता है । सुखराम को यह विद्या अपने पिता से मिली थी । इसे वह बहुत गुप्त रखता है । पर लेखक से छिपाता नहीं है क्योंकि लेखक को सुखडियों के बारे में कुछ मालूम ही नहीं था । इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में डॉ० रांगेय राघव ने कर्नटों के जीवन का समग्र चित्र संपूर्ण, सहजता, स्वाभाविक और तन्मयता के साथ प्रस्तुत किया है । उपन्यास के अंतिम परिच्छेदों में जो पंक्तियां लिखी गयी हैं उनके आधार पर उपन्यास का नामकरण हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है । यथा —"मैं पुकार-पुकार कर कहना चाहता हूं कि सुनों ! सुनो ! दिग्ते ! मैं अधिकार की यह तृष्णा चिल्ला रही है । पर मैं भी चुप नहीं हूं । ये कमीने, नीच ही आज इन्सान हैं, इनके अतिरिक्त आज सब में पाप घुस गया है । क्योंकि उन सबके स्वार्थ और अहंकारों ने उनकी आत्मा को दास बना लिया है । ये कमीने और गरीब अशिक्षा और अज्ञान से छटपटा रहे हैं । जब तक ये शिक्षित नहीं होंगे तब तक इन पर अत्याचार होता ही रहेगा । और जब तक ये शिक्षित नहीं होते तब तक इनके अज्ञान, फूट और घृणा पर संसार जघन्यता का केन्द्र बना रहेगा, तब तक इनके पुत्र धरती की मिट्टी में पैदा होते रहेंगे । परन्तु यही सम्बल है शताब्दियों से जो मनुष्य का ज्ञान है, वही मुझसे कह रहा है कि इनके दुःख सहने की ताकत है । ऐसी अटूट ताकत है कि ये दुःख को दुःख नहीं समझते । परन्तु जिस दिन जान जाएंगे कि मनुष्यत्व क्या है, उस दिन नया मनुष्य खड़ा होगा । शोषण की घुटन सदा नहीं रहेगी । वह मिट जाएगी, सदा के लिए मिट जाएगी । सत्य सूर्य है वह महलों से सदा के लिए घिरा नहीं रहेगा । मानवता पर से यह

बरसात एक दिन अवश्य दूर होगी । और तब नयी शाख में नये फूल खिलेंगे , नया आनन्द व्याप्त हो जाएगा ।"[31]

§5§ सरकार तुम्हारी आंखों में : --

जिस प्रकार आचार्य चतुर्सेन शास्त्री के "गोली" उपन्यास में लेखक ने निम्न जाति की स्त्रियों के शारीरिक शोषण को रेखांकित किया है , ठीक उसी प्रकार पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" द्वारा प्रणीत उपन्यास "सरकार तुम्हारी आंखों में भी निम्न वर्ग की स्त्रियों के जातीय शोषण को उकेरा गया है । प्रस्तुत उपन्यास में धर्मपुर स्टेट के महाराजा मदनसिंह की विलासी रास लीलाओं को चित्रित किया गया है । महाराजा मदनसिंह की विलासिता को देखकर दीवान जर्मनीदास के "मऋहाराजा" पुस्तक में आलेखित महाराजाओं के विलासी जीवन की छवि प्रत्यक्ष हो जाती है । महाराजा मदनसिंह का जीवन विलासिता , कामुकता और ऐयासी का जीता-जागता दस्तावेज है । लेखक ने धरमपुर स्टेट तथा महल की अनेक विचित्रताओं का उद्घाटन किया है । महाराजा ने अपने विलासी जीवन की आपूर्ति के लिए एक अलग महकमा ह ही खोल रखा था, जिसका काम सुदूर स्त्रियों की टोह लेकर साम-दाम-दंड-भेद से उन्हें महल के हद में पहुंचाना होता था । एक तरफ महाराजा अपनी इस विलासिता और कामुकता की पूर्ति के लिए लाखों रूपये लुटाते थे दूसरी तरफ उनके राज्य में गरीबी, गुलामी और धांधली का आलम था । उनके दरबार में विदूषक चापलूस प्रकार के दरबारी लोग, गवैये, और साजिंदे हुआ करते थे । उग्र जी ने इस उपन्यास के माध्यम से यह दर्शाया है कि तत्कालीन भारतीय राजा-महाराजाओं के खजाने का ऐश्वर्य उनके आमोद-प्रमोद और ऐखयासी के लिए था, प्रजा के कल्याण के कामों के लिए नहीं । महाराजा का मन कभी ऐसा नहीं हुआ कि कोई कालेज या विश्वविद्यालय राज्य के बालकों के लिए खोले, या जनता के लिए कोई बाग-बगीचा, तालाब तैयार करायें या रियासत के गरीब-

दुःखियों का दुःख दूर करने की कोशिश करें । वे अपने महल में एक तरफ गवैयों और कलाकारों को मुंहमांगा इनाम देते हैं तो दूसरी तरफ अपने महेल में उनकी ही बहु-बेटियों को उठवा कर मंगवा लेते हैं । इनमें अधिकांशतः निम्न वर्ग की सुन्दर किशोरियां या युवतियां हुआ करती थी । प्रसिद्ध गायक उस्ताद गुलाब-खां की बेटी फिरोजी को महल में बन्द कर दिया जाता है और अपनी विकृत कामुकता की पूर्ति के लिए उसे तरह-तरह से सताया जाता है । उस्ताद गुलाब खां को जब इस बात का पता चलता है और वह महाराजा मदनसिंह के पास जाता है तब महाराजा का वजीर रंगीन खां सिपाहियों को आदेश देकर गुलाम खां को पागलखाने में बन्द करवा देता है, जिससे महाराजा के कुकृत्यों पर परदा पड़ा रहे । ऐसे अनेक लोग पागलखाने में बंद हैं जिनकी बहू-बिटिया को महाराजा के आदमी उठा ले गये और जिन्होंने रूपयों पर अपनी कुलीनता को बेचने का इन्कार किया । महाराजा के इन अत्याचारों और कुकृत्यों के पीछे उनके वजीरों और घ चापलूस दरबारियों का भी हाथ है । उपन्यास के अन्त में यह बताया गया है कि महाराजा मदनसिंह को अपने कुकर्मों का पश्चाताप होता है और वह आत्महत्या कर लेता है । मदनसिंह की आत्महत्या के पश्चात, फिरोजी अपने पिता गुलाम खां को मिलती है परन्तु पागलखाने में रहते हुए वह पूरी तरह से विक्षिप्त हो चुका है । फलतः वे दोनों आग में जलकर कर जाते हैं । इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में सामन्तवादी अत्याचार और अभिशाप का चित्रण बड़े प्रभावशाली ढंग से हुआ है । अभी हाल ही में पाकिस्तान की बिद्रोही लेखिका ~~तहमीना~~ तहमीना दुरानी" ने पाकिस्तान के एक ऐसे धार्मिक बली साहब का पर्दाफास किया है जिसमें वे अपनी विकृत वासनाओं को पोशने के लिए कम उम्र की लडकियों पर तरह-तरह के अत्याचार करते थे । [32]

"सरकार तुम्हारी आंखों में" उपन्यास भी महाराजा मदन सिंह की ऐसी अनेक विकृत पाशविक लीलाओं को चित्रित किया है । मदन

सिंह की इस कामुकता की शिकार स्त्रियां होती थी , जिनमें कभी-कभी उच्च-वर्ग की कुलीन स्त्रियां भी होती थी परन्तु अधिकांशतः उनके अधिकारियों की गाज ऐसी गरीब-दलित वर्ग की स्त्रियों पर गिरती थी जिनकी दाद फरियाद करने वाला कोई होता नहीं था । उनके राज्य में किसी दलित स्त्री का सुन्दर होना अभिशाप से कम नहीं था ।

﴾6﴿ जुनिया : गोविंद वल्लभ पन्त : 1940 :-----

"जुनिया" कुमाऊ के परिवेश पर आधारित एक सामाजिक उपन्यास है । इसमें कुमाऊ प्रदेश के डूम या डोम ﴾अछूत﴿ जाति के जूनिया नामक एक भूमिहीन किसान की व्यथा-कथा को लेखक ने मानवीय संवेदना और दर्द के साथ उकेरा है । जूनिया कई एकड भूमि में अन्न पैदा करता है परन्तु उसके पास अपना एक मकान तक नहीं है । गांव के गुसाई जी उसके मालिक, दाता-विधाता सब कुछ हैं । गुसाई जी के घर से प्राप्त जूठन और उतरण पर ही उसके परिवार का जीवन निर्वाह चलता है । जुनिया गुसाई के यहां काम तो करता है, परन्तु बचपन से ही उसके मन में गुंसाई के प्रति एक विरोध का भाव मिलता है । जुनिया के स्वाभिमान को समाज की यह ऊँच-नींच की भावना असह्य है । एक बार जेठ की कड़ी धूप में प्यास लगने पर गोसाई की बावडी से वह अंजुली भर पानी पी लेता है , इसके लिए उसे न केवल फटकारा जाता है बल्कि उसे बुरी तरह पीटा भी जाता है । जुनिया के मन में गोसाई की प्रति विरोध की भावना उग्रतम रूप धारण कर लेती है और वह गुसाई का काम बंद कर देता है । चोमुखिया के लोहार के पास जाकर मिस्त्री और कोहार का काम सीखने की चेष्ठा करता है, परन्तु एक साल के बाद उसके पिता का देहांत हो जाता है । जुनिया के पिता ने गुसाई से कर्ज ले रखा होगा । अतः पुनः विवश होकर जुनिया को गुसाई की खेती-बाडी का संपूर्ण कार्य संभालना पड़ता है ।

इस बीच में एक और घटना घटित होती है । कैप्टन हावर्ड नाम एक अंग्रेज अधिकारी उस इलाके में नरभक्षी शेर का शिकार करने के लिए आता है । टांका मारने वालों में जुनिया भी होता है । रात में समय में जुनिया जब देखता है कि शेर उसकी ओर आ रहा तब अपने आपको बचाने के लिए वह एक शिवालय में घुस जाता है । दूसरे दिन गांव में यह बात दावानल की तरह फैल जाती है कि जुनिया ने शिव मंदिर में प्रवेश करके उसे भ्रष्ट कर दिया है । इस पर गुसाईं के क्रोध की कोई सीमा नहीं रहती । गुसाईं अपने सेवक को कहता है --" ले आ मेरी लाठी, ले आ । आज इस चांडाल को जीता नहीं छोडूंगा ।" [33] जुनिया अब सोचता है कि उस गांव में अब उसका रहना मुश्किल होता जा रहा है । अतः अपनी बेबस, असह्य निराश्रित अवस्था में वह अपनी पत्नी शानी से कहता है --" हे सानी, इस गांव से अब हमारा अन्न-जल उठ गया है । मैं चौमुखिया जाकर गुसाईं की तलाश करता हूं । तुम मेरे आने तक लोटा-तवा, नोन, तेल, कंबल आदि बांधकर रख लेना ।" [34]

उक्त घटना के उपरान्त जुनिया अपने मन में निश्चय कर लेता है कि वह चाहे भूंखा ही मर जाएगा, पर किसी दूसरे का हल नहीं जोतेगा । वह लगान पर खेती करेगा या कारीगर का काम करेगा । इस निर्णय के अनुसार वह चौमुखिया आ जाता है, जहां उसकी भेंट अपनी ही जाति के परमू चाचा से होती है । परमू चाचा ने ईसाई-पादरी , स्टेनली के धर्म प्रचार से प्रभावित होकर ईसाई धर्म अंगीकृत कर लिया था और अब वह परमू से पिटरलाल हो गया था । पीटरलाल जुनिया को भी ईसाई धर्म स्वीकार कर लेने के लिए कहता है परन्तु जुनिया परम्परागत संस्कारों को तोड़ने का साहस नहीं जुटा पाता । फलतः वह चौमुखिया में राजकारीगर का काम करने लगता है । लगान पर जमीन लेकर खेती-बाडी का काम करता है उसकी पत्नी भी शाक-सब्जियां पैदा करके कुछ कमा लेती है । परन्तु फिर भी जुनियां गुसाईं जी का लगान नहीं चुका पाता ।

विवश होकर वह अपनी पत्नी सानी के चांदी के कड़ों को बेचने के लिए निकलता है । कड़ों को बेचकर वह लगान चुका देना चाहता है परन्तु उसी बीच उसे एक पुराना मित्र मिल जाता है जिसके साथ वह मेला देखने चला जाता है । मेले में वह दोनों कड़े जुए में हार जाता है । जुनिया की स्थिति अब बड़ी विचित्र हो जाती है । वह सोचता है कि अब मैं क्या मुंह लेकर अपनी पत्नी सामने जाऊंगा । विवशता की स्थिति में वह परमू के पास चला जाता है और परमू के सम्मुख ईसाई धर्म अंगीकार करने की इच्छा प्रकट करता है । उसका नाम मि.जोन रखा जाता है । इसाई होने पर ईसाई धर्म के अन्य लोगों से जो सद्व्यवहार मिलता है उससे जुनिया बहुत प्रभावित होता है ।

अलमोड़े के पादरी मिशन स्कूल के हेडमास्टर दत्ता आदि सभी उसके साथ इज्जत से पेश आते हैं । पिटरलाल उसे बीस रूपये देते हैं । पादरी साहब उसे अंग्रेजी वर्णमाला और बाइबिल देते हैं । रूपये तथा इन चीजों को लेकर जुनिया- अब मि. जोन- चौमुखिया आता है । धर्म-परिवर्तन के पश्चात, जुनिया में काफी परिवर्तन आ जाता है परन्तु ईसाई होने के बाद भी जुनिया के कष्ट-दूर नहीं होते हैं । वह रात-दिन गरीबी की चक्की में पिसता रहता है और अन्ततः विपन्न अवस्था में ही उसका देहान्त हो जाता है ।

जिस प्रकार"धरती धन न अपना" के काली में जमींदार चौधरी वर्ग के प्रति विद्रोह और वितृष्णा का भाव मिलता है । ठीक उसी प्रकार प्रस्तुत उपन्यास के जुनिया में गुसाईं वर्ग के प्रति विद्रोह का भाव मिलता है । जुनिया परिस्थितियों का सामना करने की अपेक्षा सरल रास्ता अपनाता है । उसके कारण उसके चरित्र की दुर्बलता प्रकट हुई । "धरती धन न अपना" के नंद सिंह की भांति जुनिया भी ईसाई धर्म को अंगीकृत कर लेता है । इस प्रकार लेखक ने धर्म परिवर्तन की समस्या को भी रेखांकित किया है । वस्तुतः निम्न जाति के लोगों में धर्म परिवर्तन का कारण उच्च

वर्ग के लोग उनके साथ जो अन्याय और अत्याचार करते हैं उसमें निहित है । गरीबी भी एक कारण है परन्तु यदि समाज में सम्मान से जीने का अधिकार मिले, तो व्यक्ति गरीबी में भी गुजारा कर लेता है । इस तथ्य को लेखक ने मानवीय दर्द के साथ उकेरा है ।

{7} देवदासी : नरसिंहराम शुक्ल : 1940 :—

"देवदासी" उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है । जिस प्रकार नागार्जुन के उपन्यास इमरतियां में हमारे मंदिरों और मठों में व्याप्त भ्रष्टाचार का पर्दाफाश किया गया है, ठीक उसी प्रकार इस उपन्यास में देवालय आदि मठों में रहने वाली देवदासियों से जुड़े हुए यथार्थ को उद्घाटित किया गया है । प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने यह भलीभांति चित्रित किया है कि इन देवालयों में रहने वाली देवदासियों और वेश्याओं में केवल इतना अन्तर है कि यह धर्म के नाम पर व्यभिचार करती हैं, तो दूसरी पेट के लिए । इसको एक प्रकार से धार्मिक वेश्या - वृत्ति भी कह सकते हैं । धर्म के नाम पर व्यभिचार में लिप्त इन देव - दासियों की स्थिति अत्यन्त करूण इसलिए है कि उन्हें इस बात का भी हक नहीं है कि वे किसके साथ प्रेम करें और किसके साथ नहीं । जबकि वेश्याएं कम से कम स्वतंत्र हैं ।

इस उपन्यास को दलित चेतना से अनुप्राणित कहने के पीछे दो आशय है एक तो स्वयं नारी जाति की परिगणना दलित वर्ग के अन्तर्गत हो सकती है क्योंकि नारियों का दलन धर्म और शास्त्रों के नाम हमारे पुरूसत्ताक समाज ने किया है । दूसरे देवालयों में लायी गयी देवदासियां अधिकांशतः निम्न दलित जातियों से ही होती हैं । जब किसी दलित की लड़की अधिक सुंदर होती है तो उच्चवर्ग के किसी ढोंगी को येलम्मा देवी स्वप्न में दर्शन देती हैं कि फ्ला-फ्ला व्यक्ति की लड़की को माता देवदासी के रूप में चाहती हैं । यहां यह तथ्य ध्यातव्य रहे कि ऐसे स्वप्न किसी

उच्चवर्गीय लड़की के लिए कभी नहीं आते । दलित जातियों में इतना अन्धविश्वास होता है कि देवी के नाम पर वे अपनी प्राणप्यारी पुत्री को बली चढ़ा देते हैं , इसके पीछे उसकी भीषण दरिद्रता भी एक कारण है । थोड़ा-सा द्रव्य देकर उनको समझा लिया जाता है । एक बार जो कन्या देवदासी बन जाती है उसे देवालय के मठाधीसों की इच्छा के अनुरूप चलना पड़ता है । मंदिर के पुजारी से लेकर उससे जुड़े हुए सभी व्यक्तियों की काम पिपाशा उसे बुझानी होती है । वस्तुतः यह प्रथा समाज तथा धर्म के नाम पर कलंक है । दलित जाति और नारी जाति के लिए यह प्रथा बड़ी ही घातक है । लेखक नरसिंहराम शुक्ल इस प्रथा के कट्टर विरोधी हैं और चाहते हैं कि देवदासी की प्रथा समाप्त हो ।

प्रस्तुत उपन्यास में दक्षिण भारत की नीलपट्टम नगरी को लिया गया है । इस नगर में भगवान सुब्रह्मण्यम् का एक सुन्दर मंदिर है, इस मंदिर में देवदासी के रूप में अनेक दलित किशोरियां, बालाएं, युवतियां या प्रौढाएं रहती हैं । वस्तुतः यह मंदिर व्यभिचार का अड्डा है । मंदिर के महंत और पुजारी, मंदिर के अन्य सेवक उनके चेले-चपाटी, मंदिर से जुड़े उच्चवर्गीय लोग अधिकारीगण तथा सम्पन्न यात्रीगण इनक्ष देवदासियों के साथ मनचाहा व्यभिचार करते हैं । स्थिति की करूणता तो यह है कि यह सब कार्य धर्म के नाम पर होते हैं ।

उपन्यास में कामेश, सुंदरम् , महंत, वैकंटराव, देवदासी चेनम्मा मीनाक्षी जैसे कुछ पात्रों के द्वारा लेखक ने समस्या की विभीषिकाओं को आं आंकलित किया है । सुन्दरम् एक ऐसा युवक है जो मंदिर का अध्ययन करने के लिए नीलपट्टम् गया था , किन्तु वह भी उस नाटकीय जीवन में लिप्त हो जाता है । उसे अपने कर्म पर पश्चाताप होता है और बम्बई स्थित अपने मित्र कामेश को बुलाता है । वह इस कुप्रथा को मिटाने के लिए प्रण करता है और कामेश से प्रार्थना करता है कि इस कुप्रथा को समापन करने के लिए वे दोनों साथ मिलकर करें । सुन्दरम् के प्रयत्नों से

सुब्रह्मण्यम् के मंदिर में कामेश की एक देवदास के रूप में नियुक्ति की जाती है। महंत जी कामेश की विद्वता से खुश होकर अपने यहां रख लेता है। मंदिर का उत्तराधिकारी बेंकटराव था जो कामेश से विद्वेष रखता है। फलतः मंहत की मृत्यु के उपरांत वेंकटराव कामेश को नीलपट्टम से चालीस मील दूर रजनीपुरम् नाम स्थान पर भेज देता है। वेंकटराव के आदेश पर देवदास कामेश देवदासी चेनम्मा एवं मीनाक्षी उसके अलग-अलग पहलुओं पर गंभीरता से सोच-विचार करते हैं और अन्ततोगत्वा यह तय होता है कि देवदास का रजनीपुरम् जाना ही उन स्थितियों में श्रेयस्कर होगा। कामेश रजनीपुरम् जाकर वहां के लोगों में जागृति लाने का प्रयास करता है, दूसरी तरफ वह बम्बई के अपने पत्रकार मित्रों को लिखता है कि वे देवदासी प्रथा के खिलाफ एक अखिल भारतीय आन्दोलन का श्रीगणेश करें परन्तु इसी बीच फर्म के मैनेजर एवं ट्रस्टी रजनीपुरम् पहुंच जाते हैं और कामेश को बम्बई जाने का आदेश देते हैं।

इस घटना के बाद देवदासी चेनम्मा एवं मीनाक्षी को विभिन्न प्रकार की यातनाओं एवं यंत्रणाओं से गुजरना पड़ता है। मीनाक्षी नीलपट्टम से नव दो ग्यारह हो जाती है और बम्बई के पास स्थित किसी आश्रम में आश्रय पाती है। किन्तु राक्षस महंत उसका पीछा करता है। मीनाक्षी कामेश को चाहती है और कामेश के अलावा दूसरे पुरूष उसे घड़ियालों से प्रतीत होते हैं जो उसे हड़पने के लिए तैयार बैठे हैं। एक वृद्ध महाशय के साथ वह आश्रम में चली जाती है ताकि आश्रम के छोटे-छोटे अनाथ बच्चों का वह पालन-पोषण कर सके, इस कार्य में उसे एक प्रकार की आत्मिक संतुष्टि मिलती है, परन्तु मीनाक्षी वहां ज्यादा दिन नहीं ठहर सकती, क्योंकि बेंकटराव के गुण्डे वहां भी पहुंच जाते हैं।

देवदासी के नारकीय जीवन और कष्टों से वह पूर्णतया ऊब चुकी है। वह सोचती है कि इन स्थितियों में उसके सतीत्व की रक्षा नहीं हो सकती। फलतः निराश होकर आत्महत्या के उद्देश्य से वह समुद्र में

कूद पड़ती है किन्तु संयोगवश कामेश उसे बचा लेता है । दो दिनों के बाद जब उसे होश आता है तो कामेश और चेनम्मा उसके सामने थे । उन दोनों को देखकर मीनाक्षी अत्यंत प्रसन्न हो जाती है ।

परिस्थितिवश कामेश अपनी प्रतिज्ञा भूल चुका था कि उसे देवदासियों का उद्धार करना है परन्तु मीनाक्षी से जब वह पुनः मिलता है तब उसके भीतर की वह प्रतिज्ञा पल्लवित हो उठती है और वह अपनी संपत्ति का एक विशेष भाग देवदासी प्रथा के उन्मूलन में लगाने की घोषणा करता है । इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में दलित नारी जीवन के एक नारकीय अध्याय को प्रस्तुत किया गया है । उपन्यास नारी उत्थान की प्रेरणा से लिखा गया है । अभी कुछ वर्ष पूर्व प्रसिद्ध नृत्यांगना स्व. संयुक्ता पाणिग्रही जी ने जगन्नाथ पुरी के मंदिर में स्वयं देवदासी होने का प्रस्ताव रखा था परन्तु यहां यह ध्यातव्य रहे कि संयुक्ता जी एक सुप्रसिद्ध आन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त देवदासियों का सा व्यवहार नहीं हो सकता था । वस्तुतः उनका यह कदम नारी चेतना और दलित चेतना के विरूद्ध जाता था । आर. के. नारायण कृत गाईड उपन्यास में भी देवदासी का यत्किंचित उल्लेख मिलता है । प्रस्तुत उपन्यास में नायिका की मां को देवदासी बताया गया है । वह अपनी युवा लड़की का विवाह एक प्रौढ अंग्रेज अधिकारी से इसलिए करती है कि वह अपनी बेटी को देवदासी बनाना नहीं चाहती थी । इससे प्रतीत होता है कि देवदासी का जीवन कितना नारकीय और यंत्रणापूर्ण होता है ।

{8} गरीब : जगदीश झा विमल : 1941 :---

यह उपन्यास यद्यपि साधारण प्रकार का है । उसमें गांधी - वादी प्रभाव को लक्षित करते हुए चरखे के महत्व को प्रतिपादित किया गया है । एलोपैथी के स्थान पर आयुर्वेदिक औषधियों को श्रेयष्कर प्रमाणित किया गया है । गरीबी, जमींदारी प्रथा, पुलिस विभाग में व्याप्त

भ्रष्टाचार , धार्मिक स्थानों में पंडो द्वारा होता गरीबों का शोषण तथा विमाता की समस्या आदि सामाजिक समस्याओं को निरूपित किया गया है परन्तु आलोच्य विषय की दृष्टि से उपन्यास उल्लेखनीय ठहरता है । उपन्यास का नायक कंचन दास एक छोटी जाति का व्यक्ति है । गांव का जमींदार जीवन प्रसाद एक निर्धन, गरीब, मजदूर जीवनदास की जमीन को हडपना चाहता है । यह जमीन जीवनदास की एक मात्र पूंजी है । जमीन ही नहीं जीवनप्रसाद कंचनदास का पुत्र मदनदास की पत्नी श्यामा को भी अपने चुंगुल में फंसाना चाहता है । जीवनदास की पुत्रवधू श्यामा अत्यन्त ही सुंदर है अतः जीवनप्रसाद की कामुक दृष्टि उस पर सदैव मंडराती रहती है । उपन्यास में यह भी ध्वनित हुआ है कि दलित पिछडी जाति के लोगों की बहन-बेटियों, बहुओं की इज्जत से खेलना गांव के उच्चवर्ग के लोग तथा जमींदार अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं । परवर्तीकाल के अनेक उपन्यासों में जल टूटता हुआ, सूखता हुआ तालाब, ततथा धरती धन न अपना - इस तथ्य को भलीभांति चित्रित किया गया है ।

जमींदार जीवन प्रसाद एक धूर्त, कपटी और दुराचारी व्यक्ति है । उसके पास धन है किन्तु मानवता से उसका दूर-दराज का भी कोई सम्बन्ध नहीं है । दूसरी तरफ वृद्ध कंचनदास निर्धन और छोटी जाति का है परन्तु उसके परिवार के सभी व्यक्ति कर्मठ, परिश्रमी और ईमानदार हैं । जीवन प्रसाद पहले तो श्यामा को घर का लोभ दिखाकर अपनी ओर आकृष्ट करना चाहता है परन्तु जब वह उसमें कामयाब नहीं होता तब एक षडयन्त्र रचता है । इस जाल-फरेब में वह भोला शाह को भी सम्मिलित करता है । भोला शाह की सहायता से वह पुलिस को साधता है और पुलिस को घूस देकर श्यामा के पति पदनदास को चोरी के अपराध में गिरफ्तार करवा देता है, जिससे श्यामा विवश होकर उसके पास चली जाय । परन्तु श्यामा अपने चरित्र को कलंकित करना ब नहीं चाहती । सद्भाग्य से उसे इमानदार और प्रमाणित दारोगा, लक्ष्मीशंकर की सहायता प्राप्त होती है । लक्ष्मी-

शंकर की मदद से वह मदनदास को जेल से मुक्त करवाती है । श्यामा के दो बेटे हैं । पढ़-लिखकर वे काफी धन और यश अर्जित करते हैं । इस प्रकार श्यामा का भाग्य खुल जाता है और उसके जीवन में सुख-संतोष और सम्पन्नता के दर्शन होने लगते हैं । श्यामा के दिन पलट जाते हैं । दूसरी तरफ जमींदारी प्रथा के उन्मूलन से जीवन प्रसाद के बुरे दिन शुरू होते हैं । इस प्रकार यह एक आदर्शवादी उपन्यास है जिसमें बुरे कर्म का बुरा फल चित्रित किया गया है । उपन्यास में कहीं-कहीं राष्ट्रीय भावना भी दृष्टि-गोचर होती है । इस प्रकार उपन्यास यद्यपि साधारण प्रकार का है उसमें दलित जातियों पर होने वाले अत्याचारों का अन्यायों का और उनके शोषण का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है ।

(9) जमींदार : प्रो. इन्द्रविद्या वाचस्पति : 1942 :---

सामन्तवादी व्यवस्था में ग्रामीण लोगों पर जमींदारों का भयंकर त्रास रहता था । गोदान के राय साहब जैसे मृदुभाषी और प्रजा-वत्सल जमींदार बहुत कम होते थे । अधिकांश जमींदार तो क्रूरता की प्रतिमूर्ति से ही प्रतीत होते हैं । कई बार ऐसा भी देखा गया है कि इन जमींदारों का व्यवहार अपने समस्तरीय लोगों तथा सरकारी हाकिमों से तो उदास्तापूर्ण औरम मानवतावादी-सा रहता है, परन्तु अपने मानहतों के प्रति उनका रवैया अत्यन्त ही क्रूरतापूर्ण पाया जाता है । प्रेमचन्द के उपन्यास "प्रेमाश्रम" में हमें जमींदारों का यह रूप दृष्टिगोचर होता है । प्रस्तुत उपन्यास में भी लेखक इन्द्रविद्या वाचस्पति ने जमींदारों के अत्याचारों का यथार्थ एवं लोभवर्धक वर्णन किया है । लगान, दबेदारी , उधार , दस्तूरी तथा बेगारी के शस्त्रों द्वारा वे गांव के गरीब, निम्न जाति के किसानों को आहत करते रहते हैं । इसके मूल में उनकी अशिक्षा भी है । गरज के मारे वे चाहे जहां अंगूठा लगा देते हैं । जमींदार जब किसी गरीब हलिया को पीडित करना चाहता हैतब चाहे जितना बकाया लगान निकालता है ।

मुनसिफ, पटवारी आदि सभी जमींदार के पक्ष में होते हैं । दरिद्र अवस्था के कारण जमींदारों से उनका लेन-देन ह चलता है । उसका भी वे फायदा उठाते हैं । कई बार छोटी-सी रकम चुकाने में उनकी कई पुश्तें गुजर जाती हैं । प्रेमचन्द कृत"सवासेर गेहूं" कहानी में समस्या के इसी पहलू को रूपायित किया गया है । समय-समय पर इन गरीब लोगों को दस्तूरी भी देनी पड़ती है । जब हाकिम लोग आते हैं तो जमींदार उनका भव्य स्वागत करते हैं परन्तु अन्ततोगत्वा यह गाज उन्हीं गरीबों पर गिरती है । हाकिम लोग तो जमींदार की दरियादिली को लेकर तारीफ के पुल के पुल बांधते चले जाते हैं परन्तु उन्हें क्या मालूम कि जो भोजन वे कर रहे हैं उसमें गरीबों का खून भी सामिल है । बेगारी भी ऐसा ही एक अभिशाप है जो इन गरीब लोगों को झ झेलना पड़ता है । प्रस्तुत उपन्यास में मंगतराम हरकराम और जगतू ऐसे दलित किसान हैं जो जमींदार विश्वप्रताप के अत्याचारों का शिकार होते हैं । मंगतराम को ज्वर था, फलतः वह जमींदार की बेगारी पर नहीं जा सका । जगतू का विवाह मुनिया से होता है । मुनिया कद-काठी और देखने में सुन्दर और सुडोल थी । विश्वप्रताप का दिल उस पर आ जाता है । वह चाहता है कि दूसरे लोगों की तरह जगतू की ईच्छा थी उसके खेतों में मजदूरी करे, उनके घरबार का काम करे ताकि कभी उसे अपनी हवस का शिकार बना सके । जगतू को इस बात का इल्म है अतः वह मुनिया को विश्वप्रताप के यहां भेजने से कतराता है । इन सब कारणों से जमींदार इन लोगों को सबक सिखाना चाहता है और उनके ऊपर लगान बकाया का आरोप लगाया जाता है । तहसीलदार भी जमींदार का ही पक्ष लेता है । जमींदार के कारिंदे लगान वसूली के लिए जब जाते हैं तब उनके आतंक से कई लोग तो भाग जाते हैं । डाकूओं और क्र लुटेरों जैसे उनके व्यवहार से यह लोग थरथर कांपते हैं । आडों से उनकी बुरी तरह से पिटाई होती है । विश्वप्रताप के आतंक से जगतू को दूसरे गांव भाग जाता है पर मंगतराम अपनी घर-गृहस्थी को छोड़कर नहीं जा

सकता । जमींदारों के अत्याचार सहने के लिए यह लोग अभिशाप्त हैं और जगतू भी जहां गया है वहां कोई दूसरा विश्वप्रताप नहीं होगा, उसकी कोई गारंटी नहीं है । जमींदारों के ऐसे अत्याचारों का वर्णन इलाचंद्र जोशी कृत "निर्वासिता" तथा पाण्डेय बेचैन शर्मा "उग्र" कृत "जी जी जी" उपन्यास में भी हुआ है । संक्षेप में कहा जा सकता है कि सामन्तवादी व्यवस्था में दलित वर्ग के लोग जमींदारों के नाटकीय व्यवहार को सहन करने के लिए अभिशाप्त थे ।

﴾10﴿ कभी-न-कभी : वृन्दावनलाल वर्मा : 1945 :--

यद्यपि वृन्दावन लाल वर्मा अपने ऐतिहासिक उपन्यासों के लिए प्रसिद्ध है, तथापि यहां उनका यह उपन्यास सामाजिक समस्याओं को लेकर चलता है । उपन्यास में देवजू और लक्ष्मण नामक दो मित्रों के जीवन को चित्रित किया गया है । ये दोनों दलित वर्ग के हैं और श्रमिक हैं । देवजू और लक्ष्मण घनिष्ठ मित्र हैं और साथ साथ ही रहते हैं । उपन्यास में यह उद्घाटित किया गया है कि प्रेम जैसे उदात्त भावों पर उच्चवर्गीय लोगों का ही ठेका नहीं है, अपितु छोटी जाति के लोगों में भी ये स्वर्णीय गुण पाये जाते हैं । देवजू और लक्ष्मण प्रेम से अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे । आस पास के ज्वार क्र में उनकी मित्रता एक मिसाल थी । उपन्यास के कथानक में अचानक एक मोड तब आता है जब हरलाल अपनी पुत्री लीला को लेकर उनके यहां रहने आता है । हरलाल लीला का विवाह लक्ष्मण से करना चाहता था और उसी मनसा से वह वहां आया था परन्तु दोनों मित्र हरलाल की भीतरी इच्छा से नावाकेफ हैं । फलतः वह दोनों लीला की ओर आकृष्ट होते हैं । और दोनों लीला को बेइन्तिहा चाहने लगते हैं । दूसरी ओर लीला केवल लक्ष्मण से ही प्रेम करती थी और उसी से विवाह करना चाहती थी । परन्तु लक्ष्मण में उस समय आदर्श मित्रता का

EHTA LIBRARY
oda

भाव जगता है और अपने मित्र के सुख के लिए वह अपने प्रेम की कुर्बानी देना चाहता है । वह चाहता है कि देवजू का विवाह लीला से हो । इस प्रकार उपन्यास का कथानक यहां अत्यधिक जटिल हो जाता है । दोनों मित्रों की आदर्शवादी भावात्मकता के बीच लीला के मन की कोई चिन्ता ही नहीं करता है । अन्ततोगत्वा देवजू को इस तथ्य का पता चल जाता है कि लीला लक्ष्मण से ही सच्चा प्रेम करती है । अतः उसके प्रयत्नो से फिर लीला और लक्ष्मण का विवाह हो जाता है । परन्तु लक्ष्मण देवजू के कारण दुःखी रहने लगता है । ऐसे में उसे ज्वर आने लगता है और एक दिन बुखार की ही स्थिति में वह अपने मित्र देवजू के लिए कन्या खोजने के लिए साईकिल लेकर निकल पड़ता है । रास्ते में घने जंगल में लक्ष्मण की मुठभेड अजगर के साथ होती है लक्ष्मण किसी प्रकार बच जाता है और अपने मित्र देवजू के लिए उसके योग्य कन्या खोजने में सफल हो जाता है । उस कन्या से वह देवजू का विवाह करवाता है । उपन्यास के अन्त में लक्ष्मण देवजू से पूछता है कि तुम्हें सुख तो मिलेगा न ? तब देवजू उत्तर में कहता है --"हा कभी न कभी ।" [35] इस प्रेमकथा के साथ साथ लेखक ने निम्न श्रमिक वर्ग के लोगों की सामाजिक, आर्थिक समस्याओं को और उनके संघर्षों को यथार्थतः चित्रित किया है । जो लोग ग्रामीण जीवन से अपरिचित हैं उनको ग्रामवासियों की महानता एवं उनकी हृदय की स्पर्शता जैसी घटनाएं विचित्र एवं अस्वाभाविक लग सकती है परन्तु जो ग्राम्य जीवन से परिचित हैं और जो निम्न और श्रमिक वर्ग के लोगों को समीप से जानते हैं उनको इसमें कोई अस्वाभाविकता दृष्टिगत नहीं होगी । संक्षेप में लेखक प्रस्तुत उपन्यास द्वारा यह तथ्य रेखांकित करना चाहते हैं कि उच्च मानवीय गुणों पर किसी वर्ण विशेष का एकाधिकार नहीं है, निम्न वर्ग और निम्न जाति के लोगों में भी सच्ची मित्रता जैसें उच्च और आदर्श भाव हो सकते हैं । इतना ही नहीं वे उसके लिए कुछ भी कर गुजरने के लिए भी सदैव तत्पर पाये जाते हैं ।

§11§ अधूरी नारी : उदयराज सिंह : 1946 :---

अधूरी नारी उपन्यास में लेखक ने यद्यपि स्वच्छंद प्रेम के दुष्परिणामों को रेखांकित किया है तथापि प्रकारान्तर से उसमें दलित जीवन की समस्याओं को लिया गया है । इस उपन्यास की नायिका नीना स्वच्छन्द और बंधनमुक्त प्रेम चाहती है । दूसरी ओर उसका भाई राजेश तथा उसका मोर्डन प्रति अधीर उस पर अंकुश लगाना चाहते हैं । अधीर मोर्डन होते हुए भी नीना को अपने अधिकार की वस्तु समझता है परन्तु नीना अपने को किसी के अधिकार की वस्तु बना रखने के सख्त खिलाफ है । एक स्थान पर लेखक ने टिप्पणी की है --"चाहे पुरूष विलायती हसबन्ड बने या देशी पति, वह रोशनी का हो या सनातन विचारों का, भला वह कभी यह चाहेगा कि उसकी पत्नी किसी दूसरे से हंसकर, मुस्करा कर, आँखे नचाकर आगे बढ़ जाय ।" [36] अपनी स्वच्छंदता के कारण नीना अपनी अंतिम दिनों में बहुत दुःख पाती है । जवानी ढलते ही उसे अशक्ति का आभास होने लगता है और अपने विगत जीवन पर पछताती है । दूसरी ओर किरण नीना की नौकरानी है परन्तु उसके विचार भारतीय हैं उसे रमेश नामक एक युवक से प्रेम होता है परन्तु अपनी ~~स्थिति~~ दीन-हीन अवस्था के कारण वह उसे विवाह नहीं कर सकती । अतः वह अपना संपूर्ण जीवन सेवा व्रत में निकाल देना चाहती है । यहीं पर उपन्यास के उत्तरार्द्ध से अछूतों और दीन - दुःखियों की समस्या का निरूपण उपलब्ध होता है । किरण जो अब तक नीना के साथ रहकर अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक कष्ट झेल चुकी थी । आचार्य रामगिरी के आश्रम में आश्रय पाती है । वस्तुतः नीना का भाई राजेश किरण की ओर आकृष्ट हुआ था और वह किसी भी मूल्य पर किरण को पाना चाहता है । अतः राजेश को छोड़कर वह भाग निकलती है । तब रामगिरी के आश्रम में उसे आश्रय मिलता है यहां वह सेवाव्रत आरंभ करती है । आचार्य की सलाह पर वह हरिजनों की सेवा करती है उसे सफाई से रहने की ~~सहस~~ सलाह देती है और गांव में दूसरे सवर्णों के द्वारा गांव में

पानी के प्रश्न को लेकर झगडा होता है तब वह उनका पक्ष लेती है । परन्तु आश्रम में रहकर भी वह रमेश को भूल नहीं पाती है और अनेक बार अचंचल हो जाती है । आचार्य श्री द्वारा उसकी अचंचलता का कारण पूछने पर वह साफ साफ सारी बातें बता देती है । आचार्य रामगिरी उसकी समस्या को समझ जाते हैं अतः वे आश्रम के ऐक हरिजन शिशु को उसकी गोद में डाल देते हैं । किरण उसे सौरभ कहकर बुलाती है और अपना सारा मातृत्व उस पर उडेल देती है । अपना सारा प्यारा वह सौरभ पर लुटा देती है और अविवाहिता रहते हुए भी एक बच्चे को मां का प्रेम देकर अपने जीवन को कृत कृत्य कर देती है । मातृत्व के जिस सुख से नीना ब्याह करके भी वंचित रही, मातृत्व का वह सुख किरण बिना ब्याह किये भी प्राप्त कर लेती है । इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु वैसे तो स्वच्छंद उन्मुक्त और प्राश्चात्य प्रकार के प्रेम और भारतीय प्रेम के आदर्श को उसकी व्यावर्तक सीमाओं को रेखांकित करना है तथापि आचार्य रामगिरी के आश्रम के माध्यम से दलित जीवन की समस्याओं पर भी कुछ प्रकाश पड़ता है ।

(12) पीले पत्ते : कुंवर कृष्ण कुमार सिंह : 1946 :---

संसार के सभी सफल रचनाकारों के सामने जीवन का कोई न कोई संदेश या मिशन अवश्य रहता है । इस दृष्टि से कृष्ण कुमार सिंह द्वारा प्रणीत प्रस्तुत उपन्यास एक महत्वपूर्ण उपन्यास है । इसमें लेखक ने अनमेल विवाह की समस्या को उठाया है परन्तु साथ ही साथ उपन्यास का एक उद्देश्य अंतर्जातीय विवाह के औचित्य को स्थापित करना भी है । लेखक जाति, वर्ण आदि की सीमाओं का उल्लंघन कर मानव जीवन की एकता को स्थापित करना चाहता है । लेखक का यह स्पष्ट तथ्य है कि वर्ण और जाति की दीवारों को ढहाने के लिए अंर्जातीय विवाहों का होना परम आवश्यक है । डॉ० बाबा साहब आम्बेडकर का एतद् विषयक अभिप्राय भी बिल्कुल इसी प्रकार का है । उपन्यास का नायक कुलीन घराने का है ।

वह एक क्षत्रिय कुल का दीपक है । उसके पिता बहुत बड़े जमींदार हैं । * परन्तु वह जाति कुलीन और कुलीनता की दीवारों को भेद कर केतकी से विवाह करता है । केतकी नन्हकू चमार की बेटी है । अशोक के पिता, परिवार तथा जाति बिरादरी वालों की तरफ से खूब विरोध होता है, फिर भी अशोक केतकी से विवाह करता है । इसी उपन्यास में अशोक का एक मुसलमान मित्र अशगर भी मुनिया नामक * एक अछूत कन्या से विवाह करता है । प्रेमचन्द तथा प्रेमचन्दोत्तर काल के सामाजिक उपन्यासों में अनेक उपन्यासकारों ने अन्तर्जातीय विवाह की समस्या को उदारवादी एवं प्रगतिशील दृष्टिकोण से अंगीकृत किया है । कृष्ण कुमार सिंह से भी पहले मन्नन द्विवेदी ने रामलाल तथा कल्याणी नामक उपन्यासों में अन्तर्जातीय विवाहों की समस्या को उठाया है । कल्याणी उपन्यास में बुद्धिसेन और शरता जी कहार का विवाह सम्बद्ध करवाया है । जो लोग बिरादरी के भय से दब्बू बनकर इस प्रकार के विवाह सम्बन्धों से कतराते हैं उनके संदर्भ में लेखक की यह टिप्पणी उल्लेखनीय रहेगी --"अगर बिरादरी के नियमों की ही दुहाई देनी थी तो आर्य समाजी होने से क्या फायदा हुआ ?"[37]

अन्तर्जातीय विवाहों के विरोधके मूल में हमारी प्राचीन वर्ण व्यवस्था है । पिछले युगों में अछूतों के साथ बैठकर भोजन करने की बात तो दूर रही, उसके स्पर्श मात्र से सवर्ण हिन्दू अपने को अपवित्र मानता था और तब तक शुद्ध नहीं मानता था जब तक पुनः स्नान करके आत्मशुद्धि न कर ले । मंदिर प्रवेश तथा धार्मिक उत्सवों में भी वह सम्मिलित नहीं हो सकता था और न ही भगवान मूर्ति के दर्शन कर पाता था । हिन्दी के नव - सुधारवादी उपन्यासकारों ने उक्त तीनों मान्यताओं के प्रति विद्रोह का झंडा फहराया है, इतना ही नहीं अपने उपन्यासों में अन्तर्जातीय विवाहों को सम्पन्न भी कराया है । पीले पत्ते उसका एक उदाहरण है । अन्तर्जातीय विवाह के साथ साथ लेखक ने अनमेल विवाह की समस्या को भी चित्रित किया है । अशोक के पिता पुराने विचारों के पक्षधर हैं, फलतः अपनी पुत्री विमला का विवाह वे ठाकुर दलजीत सिंह से करते हैं जो सभी प्रकार के दुर्गुणों की

खान है । इन्हीं दुर्गुणों के कारण उनकी हत्या होती है और विमला युवावस्था में ही विधवा हो जाती है । अनमेल विवाह का दूसरा उदाहरण डॉ० केशवप्रसाद की पुत्री नीली का है । नीली बचपन से ही अशोक को चाहती थी परन्तु उसके पिता केशवप्रसाद उसका विवाह रांची के हरिशंकर वर्मा के पुत्र दिलीप नारायण वर्मा से कर देते हैं । दिलीप एक नंबर का शराबी , जुआरी और रंडीबाज व्यक्ति है । नीली का जीवन उसके साथ नरकमय हो जाता है । इन दोनों अनमेल विाहों की पृष्ठभूमि में लेखक यह स्थापित करना चाहते हैं कि जाति बिरादरी के ऐसे विवाहों की अपेक्षा पात्रता देखकर अन्तर्जातीय विवाह करना समुचित रहता है जहां विमला और नीली का जीवन यातना और यंत्रणापूर्ण चित्रित हुआ है वहां, केतकी और मुनिया का दाम्पत्य जीवन प्रसन्नतापूर्ण बताया गया है । लेखक ने यहां एक-दूसरे पहलू पर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया है कि समाज में इस प्रकार के विद्रोह के लिए व्यक्ति का आत्मनिर्भर होना आवश्यक है । अशोक अछूत कन्या केतकी से विवाह इसलिए कर पाता है कि वह शिक्षित है और केवल अपने पिता की जमींदारी पर निर्भर नहीं है । वह पढ़-लिखकर एक स्कूल में अध्यापक के रूप में कार्य करता है । नन्हकू चमार की बेटी केतकी से उसका सम्पर्क तभी होता है । छोटी जगह होने के कारण जब इसका विरोध होता है तो अशोक नौकरी से त्यागपत्र देकर शहर चला जाता है । और एक मील में नौकरी कर लेता है । शिक्षित होने के कारण कुछ ही समय में वह एक प्रेस में उपसंपादक के रूप में नियुक्त होता है । फलतः केतकी के साथ उसका जीवन खुशहाली से व्यतीत होता है । लेखक ने यहां प्रकारान्तर से अन्तर्जातीय विवाह के इस पक्ष को भी रेखांकित किया है कि ऐसे विवाहों के लिए ग्राम्य क्षेत्रों की अपेक्षा नगरीय क्षेत्र अधिक अनुकूल रहते हैं ।

अशोक के बहनोई दलजीत सिंह की हत्या होने से उसकी बहन विमला विधवा हो जाती है । विमला के विधवा होने पर उसके पिता कहते हैं —" वह अपनी बाकी जिंदगी भाई की छाह में काट दे और

परमात्मा की शरण ले ।" [38] अशोक प्रगतिशील विचारों का है । वह अपनी बहन का पुनर्विवाह करवाना चाहता है परन्तु विमला भी पुराने मूल्यों से इतनी दबी हुई है कि वह उसके लिए तैयार नहीं होती । अशोक अशोक का मन चित्कार कर उठता है --" वह शुभ दिन कब आएगा जब उस शारीरिक अग्निदाह की प्रथा से अत्यधिक भीषण इस मानसिक अग्निदाह की प्रथा का नाश सदैव के लिए पूरा हो जाएगा ।" [39] इस प्रकार विधवा का विवाह न करना सतीप्रथा से भी अधिक भयंकर और कष्टदायक है ऐसा उसका मानना है । इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने कुछ प्रगतिशील आयामों को रेखांकित किया है ।

﴾13﴿ मालिन : साधुशरण पुष्प : 1945 :--

यद्यपि इस उपन्यास में सामाजिक रूढ़िग्रस्तता, पर्दाप्रथा, तिलक दहेज आदि सामाजिक कुरूढ़ियों को चित्रित किया गया है तथापि दलित चेतना की दृष्टि से यह उपन्यास इसलिए उल्लेखनीय हो जाता है कि लाली और मंगल का विवाह जाति प्रथा भेद के कारण नहीं हो पाता है । मंगल क्षत्रिय जाति का है । उसके पिता शिवशरण सिंह जमींदार हैं । लाली छोटी जाति की है । मालिन है । अतः ठाकुर शिवसरण तथा उनकी पत्नी सुनयना मंगल और लाली का विवाह नहीं होने देते । वे दोनों एक-दूसरे को बहुत चाहते थे । मंगल का विवाह दया नामक एक महिला से होता है जो पाश्चात्य सभ्यता में पली बढ़ी है उसकी चाल ढाल , बोल - चाल, आचार-व्यवहार यह सब यूरोपियन बन गया है । दूसरी ओर शिव - सरण और सुनयना कट्टर सनातनी है । फलतः मंगल का जीवन छिन्न - भिन्न हो जाता है । लाली प्रत्येक दृष्टि से मंगल के योग्य थी परन्तु छोटी जाति की होने के कारण ही उसका विवाह मंगल से नहीं हो पाता । इस प्रकार लेखक यह प्रतिपादित करना चाहता है कि वैवाहिक सम्बन्धों में जाति इत्यादि का विचार न करते हुए पात्रता का विचार करना चाहिए । लाली

मालिन होते हुए भी सुशील है , संस्कारी है, भावनाशील है । दूसरी ओर चम्पा कुलीन होते हुए भी स्वच्छंदी और उच्छृंखल है । पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध में वह अपनी मान-मर्यादा को भी विस्मृत कर गयी है । अन्त में मंगल घर छोड़कर चला जाता है । फलतः चम्पा का जीवन भी नरकमय हो जाता है । उपन्यास के अन्त में लाली ही पुनः मंगल और चम्पा को मिलवाती है । इस प्रकार मालिन कही जाने वाली लाली कर्तव्य की बलिवेदी पर अपने प्रेम का उत्सर्ग कर देती है । इसके द्वारा लेखक यह सिद्ध करने में सफल हो जाता है कि प्रेम, त्याग, बलिदान, करूणा, जैसे उदात्त मानवीय भावों पर उच्च वर्ण के लोगों का ही ठेका नहीं होता निम्न जाति के लोगों में भी इस प्रकार के भाव पाये जाते हैं ।

निष्कर्ष :---

अध्याय के समग्रावलोकन से निम्नलिखित निष्कर्षों तक पहुंचा जा सकता है ।

1- पुनः जागरणकालीन धार्मिक, सामाजिक आन्दोलनों के फलस्वरूप अस्पृश्यता निवारण की जो मुहीम चली उसके कारण प्रेमचन्द युग के उपन्यासों में यह मुद्दा लगभग सर्वत्र पाया जाता है । प्रेमचन्दोत्तर काल में भी औपन्यासिक लेखन में उसे रेखांकित किया जा सकता है ।

2- आचार्य चतुर्सेन शास्त्री द्वारा प्रणीत "गोली" उपन्यास में सामन्तकालीन व्यवस्था में दलितों के शोषण को रेखांकित किया गया है । इनके ही उपन्यास "बगुला के पंख" में दलितों के विरूद्ध कई पूर्वाग्रह उपलब्ध होते हैं परन्तु "उदयास्त" उपन्यास में उनकी परिवर्तित दृष्टि का परिचय मिलता है ।

3- डॉ0 रांगेय राघव कृत "कब तक पुकारूं" में कर्नटों के जातीय शोषण को लेखक ने रेखांकित किया है ।

4- पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" द्वारा प्रणीत उपन्यास "सरकार तुम्हारी

आंखों में" भी कब तक पुकारूं" की भांति निम्नवर्ग की स्त्रियों के जातीय - शोषण का यथार्थ आंकलन किया गया है ।

5- गोविन्द वल्लभ पन्त कृत "जुनिया" उपन्यास में कुमाऊ प्रदेश के दलितों के शोषण को चित्रित किया गया है ।

6- "देवदासी" उपन्यास में धार्मिक वेश्यावृत्ति को उसकी यथार्थ भंगिमा में उकेरा गया है ।

7- जगदीश झा बिमल कृत "गरीब", इन्द्र विद्या वाचस्पति कृत "जमींदार, वृन्दावनलाल कृत "कभी न कभी " उदयराज सिंह कृत "अधूरी नारी कृष्ण - कुमार सिंह कृत "पीले पत्ते", साधुशरण पुष्प कृत "मालिन" आदि उपन्यासों में भी दलित चेतना के विभिन्न आयामों को उकेरा गया है ।

संदर्भ-सूची :—

1- हिन्दी उपन्यासों में दलित वर्ग-डॉ0 कुसुम मेघवाल - पृ. 63

2- गोली : आचार्य चतुरसेन शास्त्री : पृ. 252

3- ——— वही ——— पृ. 252

4- ——— वही ——— पृ. 267

5- दृष्टव्य : हंस : संपादकीय : नवम्बर-दिसम्बर-97, पृ :

6- उदयास्त : आचार्य चतुरसेन शास्त्री : पृ. 31

7- दृष्टव्य : ——— वही ——— : पृ. 36

8- ——— वही ——— : पृ. 36

9- ——— वही ——— : पृ. 36

10- दृष्टव्य : लेख : मैं समाजवादी हूं : स्वामी विवेकानंद :हंस" - अक्टूबर - 1997 , पृ. 15-18

11- उदयास्त : चतुरसेन शास्त्री - पृ. 43

12- ——— वही ——— : पृ. 46

13- ——— वही ——— : पृ. 58

14- ——— वही ——— : पृ 58

15- ——— वही ——— : पृ. 58

16- ——— वही ——— : पृ. 128

17- कब तक पुकारूं - आमुख - पृ. 5

18- ——— वही ——— : पृ. 378

19- ——— वही ——— : पृ. 47-48

20- आंचलिक उपन्यास : ज्ञानचन्द्र गुप्त : पृ. 58

21- कब तक पुकारूं : रांगेय राघव : पृ. 16

22- हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना : डॉ0 कुंवरपाल सिंह : पृ. 169

23- कब तक पुकारूं : रांगेय राघव : पृ. 51

24- ——— वही ——— :पृ. 28

25- कब तक पुकारूँ : रांगेय राघव : पृ. 29

26- ------------ वही ----- : पृ. 51

27- ------------ वही ----- : पृ. 45

28- ------------ वही ----- : पृ. 45

29- ------------ वही ----- : पृ. 48

30- ------------ वही ------: पृ. 64

31- ------------ वही ----- : पृ. 634

32- द्रष्टव्य : [illegible] संदेश : दिनांक --- 15-04-1998.

33- जुनिया : गोविन्द वल्लभ पन्त : पृ. 45

34- ----------- वही ------- : पृ. 46

35- कभी न कभी : वृन्दावन लाल वर्मा : पृ. 113

36- अधूरी नारी : उदयराज सिंह : पृ. 111

37- कल्याण : मन्नन द्विवेदी : पृ. 229

38- पीले पत्ते : कुंवर कृष्ण कुमार सिंह : पृ. 114

39- ---------- वही ----- पृ. 145